(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ८] मथुरा, १ दिसम्बर सन् १९४७ ई० [अंक १२

अब हम अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को लेकर रहेंगे।

परमात्मा के अमर पुत्र मनुष्य को असीम अधिकार प्राप्त हैं। सम्राटों के सम्राट परमात्मा का युवराज-मनुष्य ऐसे दैवी अधिकारों से सुसम्पन्न बनाया गया है, जिनके द्वारा उसे सृष्टि का मुकुट मणि होने का गौरव प्राप्त है। इन अधिकारों के फल स्वरूप उसे आत्मिक और भौतिक सम्पदाओं एवं समृद्धियों से भरा पूरा होना चाहिए; अनन्त, अखण्ड सुख शान्ति का भागी होना चाहिए।

परन्तु आज विचित्र दशा है—शैतानी, आसुरी शक्तियों ने मनुष्य को उसके दैवी स्वभाव—जन्म सिद्ध अधिकारों से वंचित कर दिया है। अज्ञान, अविवेक, प्रलोभन, भय, नैराश्य एवं संकीर्णता ने उसकी दिव्य दृष्टि का अपहरण करके उसे क्रूर, कुकर्मी, हिंसक, हत्यारा, धूर्त, मूर्ख, पाखंडी एवं मोहग्रस्त बना दिया है। सृष्टि का मुकुट मणि—धर्म का धारण करने वाला, महामानव—आज निरीह एवं असहाय की तरह दुख, दारिद्र की असहनीय पीड़ाओं में जकड़ा हुआ तड़प रहा है।

अब हम इस स्थिति में रहने के लिए तैयार नहीं, इस शैतानी षड्यंत्र के विरुद्ध अब हम बगावत का झण्डा उठाते हैं। दुनियां अधिकारों की लड़ाई लड़ रही है, हम भी अपने अधिकारों की आवाज बुलंद करते हैं। जिसने हमें इस प्रकार पराधीन, लुंज पुंज, बना रखा है उसके विरुद्ध समस्त साधनों से लड़ेंगे और अब हम प्रण करते हैं कि अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को-दैवी गुणों को-प्राप्त करके रहेंगे।

—————

पहिले इस पृष्ठ को पढ़ लीजिए

अखंडज्योति के पाठकों को कुछ आवश्यक सूचनाएं।

(१) यह अंक इस वर्ष का अन्तिम अंक है। इस अंक के साथ अधिकांश ग्राहकों का चंदा समाप्त होजाताहै। पाठकोंसे प्रार्थना है कि अपना चन्दा मनीआर्डर से भेजदें। वी. पी. में व्यर्थ ही पाँच आने अधिक खर्च पड़ते हैं। अकारण पांच आने गंवाना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

(२) देर में चन्दा भेजने वालों को पिछले अंकों से वंचित रहना पड़ता है क्योंकि कागज की अव्यवस्था के इस जमाने में प्रायः उतनी ही प्रतियां छपती हैं जितने ग्राहक रजिस्टर में दर्ज होते हैं। इसलिए पाठक, अपना चन्दा शीघ्र ही भेजदें, जिससे उनकी फाइल अधूरी न रहे।

(३) मनीआर्डर कूपन पर अपना ग्राहक नम्बर और पूरा पता हिन्दी या अंग्रेजी में साफ साफ लिखना चाहिए। अधूरा या घसीट कर लिखा हुआ पता ठीक प्रकार न पढ़ाजाने से कुछ का कुछ दर्ज होजाता है और पत्रिका बीच में ही गुम होती रहती है।

(४) पुराने ग्राहक अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक मनीआर्डर कूपन पर "नयाग्राहक" शब्द लिखदें। जिन्हें ग्राहक न रहना भी हो वे एक कार्ड भेज कर अपने निर्णय की सूचना दे दें।

(५) अधूरे वर्ष का हिसाब रखने में हमें बड़ी भारी असुविधा होती है। उधर ग्राहकों की फाइलें भी अधूरी रहती हैं। इस वर्ष से स्थायी ग्राहकों के पते छपे हुए रहेंगे, ताकि पत्रिका पहुंचने में गड़बड न हो, परन्तु अधूरे वर्ष के हिसाब वालों के पते न छपाये जासकेंगे। इसलिए जिनका हिसाब बीच के किसी महीने में चलता है उन ग्राहकों से विशेष आग्रह पूर्वक अनुरोध है, कि अगले वर्ष के शेष महीनों का भी चन्दा भेजकर अपना हिसाब शुरू साल से ही रखें।

(६) यदि कभी पता बदलवाना हो तो (१) ग्राहक नम्बर (२) पुराना पता (३) नया पता, तीनों बातें लिखकर सूचना देनी चाहिए। केवल नया पता भेजने से पता बदलना कठिन होता है।

(७) यहां से हर महीने दो बार भली प्रकार जांच कर पत्रिका भेजी जाती है। फिर भी यदि किसी महीने का अंक न पहुंचे तो उस महीने के भीतर ही न पहुंचने की सूचना हमें भेज देनी चाहिए। कई महीने बाद सूचना भेजने पर पुराने अंक समाप्त होजाते हैं, तब उन्हें भेजना कठिन होता है।

(८) अखंड ज्योति के ग्राहक बढ़ाना एक प्रकार से सतोगुणी फल उत्पन्न करने वाले वृक्ष लगाना है। इससे (१) ग्राहकों को आत्मकल्याण का, सुख शान्ति का मार्ग मिलता है (२) अखंडज्योति की शक्ति बढ़ने से वह लोक सेवा के कार्यों को अधिक मात्रा में, अधिक शीघ्रता से, अधिक सफलता के साथ, पूरा करती है। इस प्रकार अखंडज्योति के ग्राहक बढ़ाना एक स्वल्प श्रम का महान् पुण्य कार्य है। इस दिशा में शक्तिभर प्रयत्न करने के लिए हम अपने पाठकों से अनुरोध करते हैं।

(९) कोई सज्जन चैक से रुपया न भेजें। यदि भेजना ही हो तो आठ आना अधिक भेजें। क्योंकि यहां की बैंक छोटे से छोटे चैक पर आठ आना कमीशन चार्ज करती है।

विनीत—

व्यवस्थापक "अखंड ज्योति" कार्यालय, मथुरा।

मथुरा १ दिसम्बर सन् १९४७

सुरक्षा और पुनर्निर्माण के लिए

हम एक लम्बी अवधि के उपरान्त पराधीनता के पाशों से मुक्त होरहे हैं। इस मुक्ति के साथ २ अनेकों उत्तरदायित्व ऊपर आये हैं। कुचक्री शैतान इस स्वाधीनता को नष्ट करने पर तुले हुए हैं, इन षड्यंत्रों और आक्रमणों का मुकाबिला करके इस इतने बलिदानों के पश्चात् प्राप्त हुई स्वतंत्रता की रक्षा करना है। दूसरी ओर अपनी शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक निर्बलताओं को दूर करना है शोषकों के हाथ में लम्बे समय तक हमारी राजनैतिक बागडोर रही है इसका प्रभाव व्यापक हुआ है। चतुर्मुखी अवनति हुई है। हमारी जातीय एकता एवं संस्कृति की दीवारें हिल गई हैं, उनमें दरारें पड़ गई हैं। चारों ओर उजाड़ पड़ा हुआ है। इसे हराभरा बनाये बिना जनता को वह सुख शान्ति नहीं मिल सकती जो स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ मिलनी चाहिए।

आक्रमण करना आसान है पर आक्रमण कारियों के इरादों को विफल कर देने का आयोजन कठिन है। किसी चीज को तोड़ना बिगाड़ना आसान है पर उसका निर्माण करना कठिन है। आज राष्ट्र के सामने (१) सुरक्षा और (२) पुनर्निर्माण के दो प्रधान कार्य उपस्थित हैं। विध्वंसक, दुष्टात्मा, स्वार्थी, दुर्जनों के यह प्रयास जारी हैं कि भारत की शक्ति, प्रतिष्ठा एवं सम्पन्नता बढ़ने से पूर्व ही नष्ट भ्रष्ट होजाय। यह कुचक्री, गुप्त और प्रकट रूप से, भीतर और बाहर से अपनी घातें चला रहे हैं। इनको विफल बनाने के लिए बड़ी चतुरता, दूरदर्शिता, दृढ़ता और तत्परता की आवश्यकता है। साथ ही उजड़े हुए इस उपवन को फिर से हराभरा करने के लिए लिए बड़ी मात्रा में आयोजन करने हैं, जिससे गरीबी बीमारी, अविद्या, अनैतिकता, अभाव, अन्याय, आदि की चक्की में पिसती हुई जनता, अपनी फिर पीड़ा से छुटकारा पासके।

निस्संदेह सुरक्षा और पुनर्निर्माण के दोनों कार्यों को पूरा करने में सरकार का बहुत बड़ा भाग है। शासन तंत्र के सुसंचालित होने से इन दोनों महान कार्यों के पूरा होने में बहुत सुविधा होसकती है, परन्तु यह समझना भूल है कि केवल मात्र सरकार ही इन कार्यों को पूरा कर लेगी। कोई सरकार कितनी ही मजबूत या सुयोग्य क्यों न हो पर उसकी मर्यादा सीमित है। भौतिक उपकरणों पर अधिकार, व्यवस्था नियंत्रण एवं उनका प्रयोग करना बहुत हद तक सरकार के हाथ में है पर इतने मात्र से इन दोनों महान कार्य पूरे नहीं हो सकते।

मनुष्य दो पदार्थों से मिल कर बना है एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म। शरीर और धन सम्पत्ति स्थूल है और मन, बुद्धि, अन्तःकरण सूक्ष्म है। मोटी दृष्टि से जो कुछ स्थूल है वही मनुष्य दिखाई पड़ता है। पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। सूक्ष्म की शक्ति और सत्ता अनन्त है। उस सूक्ष्म की ही प्रेरणा से मनुष्य की समस्त क्रियायें होती हैं और उन्हीं के आधार पर उसकी बाह्य स्थिति का निर्माण होता है। सरकारें मनुष्य के स्थूल भाग को स्पर्श कर सकती हैं। पर सूक्ष्म तक उसकी पहुंच बहुत कम है। व्यक्तिगत चरित्र,

आहार, विहार, रहन सहन, दिनचर्या, लेखन, भाषण, व्यसन, धर्म, सम्प्रदाय, त्याग, उदारता, अनुदारता, स्वभाव चरित्र, रुचि, इच्छा, अभिलाषा, जीविका, व्यवसाय, मनोरंजन, अर्थ संचय, कर्तव्य पालन, जीवन का सदुपयोग दुरुपयोग आदि अनेकों क्षेत्र ऐसे हैं जिन पर सरकार का निमंत्रण प्रायः नहीं के बराबर है। इन क्षेत्रों में कौन व्यक्ति किस दिशा में चल रहा है, इसकी देख रेख रखना सरकार की सीमा से परे है। वह तभी कुछ रोक लगा सकती है जब कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से दूसरों को हानि पहुंचा रहा हो। लेकिन इन सब गतिविधियों से अप्रत्यक्ष रूप से उस व्यक्ति का तथा समाज का जो भयंकर हित अनहित होता है उसको स्पर्श करने में सरकार असमर्थ है।

यह बात भली प्रकार जान लेने की है कि इस संसार में जो कुछ स्थूल है उसकी मूल में सूक्ष्म काम करता है। शरीर और सम्पत्ति की, व्यक्ति और समाज की उन्नति अवनति एवं भली बुरी क्रियाएं मनुष्यों के अन्तःकरण में निवास करने वाले व्यक्तिगत विचारों भावों एवं सिद्धान्तों के ऊपर निर्भर रहते हैं। इसलिए जो शक्ति का अखूट भण्डार है, वह तो सरकार की पहुंच से बाहर ही रह जाता है। अन्तःकरणों में निवास करने वाले विश्वास, आदर्श और विचार ही जन-रुचि को बनाते हैं और उस जन रुचि के पीछे प्रजातंत्री सरकारों को चलना पड़ता है।

इस जन रुचि का निर्माण करना धर्म का, काम है। ब्राह्मणों को महाराज अर्थात् महान राजा कहा जाता है क्यों कि राजा प्रजा के भौतिक सामिग्री पर अधिकार रखता है, पर ब्राह्मण-धर्म और दर्शन द्वारा जन साधारण के अन्तःकरणों को, चरित्रों का, स्वभावों का,आदर्शों का निर्माण करते हैं, जन रुचि की दिशा मोड़ने का कार्य उनके हाथ में होने के कारण शक्ति का अन्तिम, अटूट स्रोत भी उनके हाथ में होता है, इसीलिए वे महाराज कहलाते हैं।

आज हमारे ऊपर बड़ा भारी उत्तर दायित्व है। सुरक्षा और पुनर्निर्माण का बड़ा भारी काम सामने पड़ा है। सरकार अपना काम कर रही है। राजनीति के अनुभवी उस दिशा में कार्य प्रवृत्त हों।

साथ ही जन रुचि के निर्माण के लिए समस्त ब्रह्मतत्वों को अखंडज्योति आमंत्रित करती है। यह क्षेत्र सरकारी क्षेत्रों से भी अधिक आवश्यक, स्थायी एवं सुदृढ़ परिणाम उपस्थित करने वाला है। ब्रह्म परायण आत्माओ, आओ! अपने महान् धार्मिक आदर्शों को जन जन के अन्तःकरण तक पहुंचावें और हर एक नागरिकको ऐसा सुरुचि सम्पन्न बनावें कि वह राष्ट्र की सुरक्षा में सुदृढ़ चट्टान की तरह अटूट बने और पुनर्निर्माण में उस बीज का अनुकरण करे जो अपने को गला कर एक महान वृक्ष उत्पन्न करता है। विचारको! भूलो मत, राजनीति की अपेक्षा धर्म और दर्शन की शक्ति अनेक गुनी अधिक है। इसलिए आओ, इस महान् शक्ति को जागृत करके अपने राष्ट्र को उन्नति के शिखिर तक पहुंचा देने के लिए प्राण प्रण से प्रयत्न करें।

"मेरा वही अच्छा" यह समझना मूर्खता और "अच्छा वही मेरा" यह समझना बुद्धिमानी है।

\+ \+ \+

जीवन का एक भी क्षण सोने की करोड़ों मोहरों से नहीं खरीदा जा सकता। तो फिर ऐसे अमूल्य क्षणों को व्यर्थ खो देने से अधिक और क्या मूर्खता होगी? \+ \+

समय प्रकृति का खजाना है। घंटे और घड़ियाँ, ये उसकी मजबूत तिजोरी हैं। क्षण उसके मूल्यवान हीरे हैं। इन अमूल्य हीरों को व्यर्थ ही इधर उधर न फेंक दो।

\+ \+ \+

देश सेवा और जाति सेवा ये यथार्थ ही अत्युत्तम है, परन्तु आत्म-सेवा सर्वोत्तम है।

हमारे भारतीय आदर्श।

(श्री दौलतराम कटरहा बी० ए० दमोह)

स्वामी रामतीर्थ ने एक बार कहा था कि भारतीय आदर्श पाश्चात्य आदर्शों से बिल्कुल भिन्न हैं। भारत में जहां किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता उसके भोग-त्याग से नापी जाती है वहां पाश्चात्य देशों में कौन व्यक्ति कितना सुखोपभोग कर सकता है, यही उसकी श्रेष्ठता की कसौटी है।

भारतीयों को सेवा और भोग-त्याग के इस आदर्श ने ही भारत को उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया था। महाराज चन्द्रगुप्त के समय में भारतीय सभ्यता का वर्णन करता हुआ मेगस्थनीज लिखता है कि भारतवासियों का जीवन अत्यन्त त्याग-पूर्ण और निःस्वार्थी होता है। भारतीय गृहस्थ भोग-लोलुप नहीं होते। गृह-स्वामी और गृह-स्वामिनी दास-दासियों को भोजन कराने के उपरान्त ही भोजन पाते हैं। पहिले अपने आश्रितों और छोटे बच्चों को खिलाए बिना वे किसी वस्तु का उपभोग नहीं करते। उसी तरह हिंदुओं के एक व्रत विशेष में भगवान विष्णु की उपासना और पूजा ही विशेष लक्ष्य होता है किंतु उनकी पूजा करने के पहिले गणेश आदि अन्य छोटे छोटे अनेक देवी-देवताओं की पूजा का विधान है। आप कहेंगे भगवान विष्णु की पूजा एक दम सीधे ही क्यों नहीं कर ली जाती किंतु इसमें एक तत्व सन्निहित है और वह है स्वार्थ एवं भोग-लोलुपता का त्याग तथा अपने आश्रितों को अपने से प्रथम आदर-सत्कार और बड़प्पन दिलाने का भारतीय आदर्श। भगवान राम के जीवन में इस आदर्श का पालन आपको सर्वत्र ही मिलेगा। क्या स्त्री, क्या भाई, क्या मित्र और क्या प्रजागण सबके साथ व्यवहार करते समय आप देखेंगे कि भगवान राम का ध्यान अपनी सुख-सुविधाओं की अपेक्षा उनकी सुविधाओं की ओर ही अधिक रहता है।

आत्म-त्याग का हमारा यह आदर्श अब लुप्त प्रायः हो गया है और हमारे द्वारा पाश्चात्य आदर्शों को अपनाए जाने के कारण हमारे राष्ट्रीय जीवन में बड़ा दोष आगया है। आज हमारी यह वृत्ति है कि हमें अपनी ही अपनी पड़ती है और हम दूसरों को उनके उचित अधिकारों से भी वंचित रखना चाहते हैं। बाद में पहुंचने पर भी हम अपने पद और धन के बल पर, तरजीह प्राप्त करना चाहते हैं। बहुधा हम पहिले अपनी ही सुख-सुविधाओं पर ध्यान देते हैं, पश्चात् अपने से न्यून स्थिति वालों तथा अपने अनुगामी और आश्रितों पर। वेतन लेते समय पहिले अधिक वेतन पाने वाले व्यक्ति अपना वेतन ले लेते हैं और फिर कभी कभी कई दिनों बाद अल्पवेतन भोगी व्यक्ति कहीं अपना वेतन पाते हैं। किन्हीं लोगों की स्वार्थ-परता इतनी बढ़ जाती है कि वे अपने बच्चों के साथ भी स्वार्थ-मय व्यवहार करते हैं। खाते-पीते समय पहिले अपना हिस्सा लगाते हैं और फिर कहीं बाद में बच्चों का। बच्चे खड़े देखते रहते हैं और सयाने लोग सुस्वादु द्रव्य चटकर जाते हैं। ऐसा ही व्यवहार उनका घर के सेवकों के साथ भी होता है। पार्टियों में या अन्य अवसरों पर वे बड़ी लालसा से आशा लगाए रहते हैं अतएव अपने स्वामियों की इस लिप्सा का उन पर अच्छा असर नहीं पड़ता। वे बड़ा बुरा आदर्श उनके सम्मुख उप-स्थित करते हैं। भोग प्राप्ति उनके जीवन का लक्ष्य होता है अतएव नौकरों का भी यही लक्ष्य हो जाता है और इस तरह इन श्रेष्ठ-जनों के द्वारा निम्न श्रेणी के लोगों के सामने एक बुरा आदर्श उपस्थित किये जाने के कारण सारा राष्ट्रीय आदर्श बिगड़ जाता है और देश पतित हो जाता है।

यद्यपि बाबर अभारतीय था तो भी वह आत्म-त्याग के इसी भारतीय आदर्श को अपनाए हुए था। काबुल के रास्ते भारत आते समय एक बार उसकी सेना को गिरती हुई बर्फ का सामना

करना पड़ा। उसने अपने समस्त सैनिकों को तम्बुओं के भीतर सोने के लिए कहा और जब उसके लिए किसी तम्बू में जगह न रहीं तो उसने तम्बुओं के बाहर बैठे ही बैठे सारी रात गुजार दी। बाबर अपनी सेना का इसी तरह ख्याल रखता था और इस कारण वह उनका प्राण-प्रिय हो गया। नेपोलियन भी उसी प्रकार अपने सैनिकों का खूब आदर करता था इस कारण उसने अनेक युद्धों में विपत्तियों पर विलक्षण विजय प्राप्त की। महात्मा तुलसीदास ने इस भारतीय आदर्श को कितने सुन्दर ढंग से प्रतिबिम्बित किया है और अपने इष्ट देव के जीवन में ओत-प्रोत होता हुआ दर्शाया है! वे कहते हैं—

प्रभु अपने नीचहुं आदरहीं।
अग्नि-धूम गिरि शिर तृण धरहीं॥

एक बार इन्द्रदेव भगवती उमा के पास बैठे हुए थे कि इतने में लक्ष्मी जी आईं और इन्द्र ने उनसे उनके आगमन का कारण पूछा। लक्ष्मीजी ने बताया कि वे अभी अभी राक्षसों को छोड़कर आरही है। इन्द्र के आश्चर्यान्वित होकर पूछने पर कि वे पहले राक्षसों के घरों में क्यों निवास करती थीं और उन्होंने अब किस कारण से उनके घरों को छोड़ दिया है उन्होंने बताया कि राक्षस पहिले सदाचारी होते थे। वे वृद्ध-जनों का आदर करते थे, दीन-दुखियों और आपत्ति-ग्रस्त लोगों के प्रति सहानुभूति रखते थे और माता-पिता आदि गुरुजनों के आज्ञाकारी होते थे इसलिए मैं उनके गृहों में बहुत समय से निवास करती आई किंतु उन्होंने अब इन शुभ गुणों को छोड़ दिया है और वे अब दुराचारी होने लगे हैं। मित्रों के प्रति जहां वे पहिले सच्ची सहानुभूति रखते थे वहाँ वे अब मित्र की विपत्ति को देखकर मन ही मन प्रसन्न होते हैं। किसी का मकान जलता रहता है और लोग खड़े खड़े तमाशा देखते रहते है। स्त्रियों में सात्विकता जाती रही है और वे अब अत्यन्त हाव भाव से कटाक्ष करती हुई निकलती हैं। उनका शृंगार अत्यन्त तीव्र और कामोत्तेजक होता है। पुरुष बड़े बूढ़ों का आदर-सत्कार नहीं करते। गुरु जनों के आने पर वे अब बैठे ही रह जाते हैं और उठकर अभिवादन नहीं करते। गुरुजनों के समक्ष भी वे प्रमाद-पूर्वक नशीली वस्तुओं का सेवन तथा रमणियों से प्रेमालाप करते रहते हैं। पुरुष वृषली गामी तथा स्त्रियां अब दुराचारिणी हो गई है। घी आदि पवित्र वस्तुओं को वे अब जूठे हाथों से ही छूने लगे हैं। दूध आदि वस्तुओं को वे अब आलस्य वश ढकी तरह नहीं रखते। उनके छोटे छोटे बच्चे खड़े देखते रहते हैं और वे अब मिष्टान्नादि सब चट कर जाते हैं। अतएव मैं अब राक्षसों को त्याग कर देवताओं के पास आई हूं।

भगवती लक्ष्मी के उपरोक्त कथन से हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और हमें स्मरण रखना चाहिये कि राक्षसों के बाद के आचरण ने ही उन्हें जघन्यकर्मा और लोक-निन्दा बना डाला। अतएव जब तक हम अपने बड़े बूढ़ों, आश्रितों और सेवक जनों की भी सेवा का आदर्श ग्रहण न करेंगे तब तक हम सुखी और समृद्ध नहीं हो सकते।

महाभारत के पश्चात् पांडव-गण विरक्त-भाव से हिमालय पर प्राण-त्याग-निमित्त बढ़े चले जारहे थे। महात्मा युधिष्ठिर को छोड़ सभी पांडव धराशायी हो गए। केवल वे और एक कुत्ता ही जो रास्ते में ही उनके साथ हो लिया था, शेष रह गए। आगे चलकर उन्हें लेने के लिए एक विमान आया किंतु उन्होंने कुत्ते को छोड़कर अकेले ही स्वर्ग जाने से इंकार कर दिया। अपने अनुगामियों के प्रति यह वात्सल्य-भाव भारतीय संस्कृति का एक अनुपम आदर्श है और हम आशा करते हैं कि स्वतंत्र भारत में वह पुनरुज्जीवित होगा।

———

यदि तुम्हें बड़े बनने की चाह हो तो प्रथम छोटे बनो। गहरी नींव गाड़े बिना ऊंचा मकान नहीं बनाया जा सकता। + +

बुरी आदतें और कुसंस्कार

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

मनुष्य की बुरी आदतें मूलतः उसके हृदय में जमे हुए कुसंस्कारों के परिणाम हैं। प्रत्येक अंग का परिचालन आन्तरिक सूचनाओं द्वारा होता है। ये आन्तरिक सूचनाएं कुछ तो स्वयं अपने द्योतन से होती हैं, कुछ दूसरों की विषैली सूचनाओं के कारण होती हैं। परिस्थितियां, दूसरे व्यक्तियों के साथ रहन सहन, बोलचाल, विशेष सम्प्रदाय के कारण भी अनेक प्रकार की आदतों का जन्म होता है।

कुछ जातियों में बीड़ी, सिगरेट, पान या शराब पीना बुरा नहीं समझा जाता, ऐसे सम्प्रदाय भी हैं, जिनमें प्याज, लहसुन, मांस खाना एक साधारण सी बात है। यह सब जातिगत कुसंस्कारों का परिणाम है। युग युग से उनके पूर्वज उन्हीं विचार तथा आदतों की शृंखलाओं में आबद्ध रहे। उनके बच्चे भी अपने पूर्वजों के विचारों की छाप से मुक्त न रह सके।

हम देख रहे हैं कि अनेक व्यक्ति आज अपने बुरे संस्कारों के कारण कलुषित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे अपनी आदतों से मजबूर हैं। हमने स्वयं देखा है जेल के कैदियों को तीन आने रोज मिले। इनमें से अधिकांश व्यक्तियों ने अपने पैसे बीड़ी, पान, सुंघनी, तम्बाकू, चाय, इत्यादि में व्यय कर डाले। कोई भी पौष्टिक तत्व उनके हाथ न लगा। अनेक निम्न श्रेणी के व्यक्ति, मजदूर, मोची, नाई, मेहतर दिन भर भूखे रह कर भी सन्ध्या समय चार चार आने सिनेमा में फूंक देना अच्छा समझते हैं। इसी प्रकार अनेक कंजूस व्यक्ति अपने तथा अपने बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा, विकास, मनोरंजन में कुछ भी काम नहीं करते किन्तु विवाह, शादी, दहेज, नुकता, इमारत बनाने में बहुत व्यय कर डालते हैं। धन का ऐसा अपव्यय एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता एवं अनेक जन्मों के कुसंस्कारों का द्योतक है।

क्या इन बुरी आदतों से, इन दूषित संस्कारों से छुटकारे का कोई मार्ग है?

वास्तव में मनुष्य का उत्थान तथा पतन उसके मन मंदिर में होता है? वहीं से विकास एवं वहीं से पतन का प्रारंभ होता है। दुर्बलता और शक्ति मानसिक विकास या पतन की दो भिन्न भिन्न स्थितिएं हैं। पुनरुत्थान तथा नव निर्माण का कार्य भी हमें यहीं से प्रारंभ करना चाहिए।

मनुष्य के हृदय में सभी उत्तम गुणों के बीज मौजूद हैं। कुछ में ये दूसरों की बनिस्बत अधिक विकसित हैं। हमें चाहिए कि हममें जो दुर्बलता है, उसके विपरीत वाले गुण को प्रोत्साहन देकर उसे विकसित करें। पुनः पुनः आत्म-द्योतन से अनायास ही मानव स्वभाव के उत्तम तत्त्व प्रस्फुटित होकर बढ़ने लगेंगे। जैसे २ ये विकसित होंगे गन्दी आदतें तथा विषैले संस्कार फीके पड़ते जायंगे। हमें चाहिए कि हम नवनिर्माण का कार्य अपने आपको भाग्यशाली मानकर आरंभ करें। हम सोचें कि हम बड़े भाग्यशाली हैं। सुख, समृद्धि, आनन्द, विशुद्ध, जीवन से हमारा निकट सम्बन्ध है। हमारी बुरी आदतों का अन्त होगया है, शुद्ध विवेक जागृत होने से कुसंस्कार स्वतः दब गये हैं। हम अब केवल भव्य विचार, पवित्र संकल्प, सद्चिन्तन को ही हृदय में स्थान देते हैं।

आप दृढ़ता से मन में नये पवित्र संस्कार जमाइये। बार बार उन्हें दुहरा कर पुराने कुसंस्कारों को फीका बनाइये। प्रतिक्षण अपने मनमें सद्चिन्तन, सद्वचन, शुभ कर्म में प्रवृत्त रहिये। पवित्रस्थानों में रमण कीजिये। सद्पुरुषों के सम्पर्क में रह कर उनकी मंजुलवाणी में अवगाहन कीजिए। पुराने स्वभाव तथा आदतों को दूर करने का एक ही उपाय है। वह है उनके विरुद्ध उत्तम तथा विशुद्ध संस्कारों का दृढ़ निश्चय तथा दृढ़ता से उन पर कार्य। सत्य संकल्प से सब मनोरथ सम्पन्न होते हैं।

योगी अरविन्द की वाणी।

प्रभु और मानव दोनों का मिलन हो रहा है। अर्थात् प्रभु का मानव में अवतरण और मानव का प्रभुत्व की ओर ऊर्ध्व गमन।

परन्तु इस परस्पर योग का अर्थ 'विनाश' अथवा 'लय' नहीं होता। जीवन में जो जिज्ञासा, आवेग, दुःख तथा आनन्द व्याप्त हैं उनका सार्थकत्व आत्मविनाश में नहीं रहता।

यदि आत्मविनाश ही उनका अन्तिम आदर्श होता तो ब्रह्माण्ड की यह लीला ही आरम्भ न हो पाती।

विश्व का आदि कारण आनन्द है, शुद्ध आनन्द को जानने से तुम्हें भगवान् का बोध होगा।

विश्व का आदि किस में है? सत् में। अस्तित्व का आनन्द लेने के लिए सत् स्वयं अनन्त रूप हुआ है असंख्य कोटि स्वरूप उसने धारण किये हैं। इस प्रमाण में ही वह अपने स्वत्व को अनन्त रूपों में प्राप्त करता है।

तब, इस विराट विश्वरचना का अन्त क्या है? कल्पना करो कि मधु स्वयं अपने माधुर्य का स्वाद ले सकता है और उसकी वे सर्व बिन्दु भी विशेष एकत्र आनन्द ले सकती हैं, तथा समस्त बिन्दु एक दूसरी की मिष्टता का स्वाद भी चख सकती हैं। और प्रत्येक मधुबिन्दु सम्पूर्ण मधुपुट का स्वाद ले सके तो इसमें क्या है?

भगवान्, आत्मा और विश्व का अन्तिम आदर्श भी इसी प्रकार का है।

समग्र विश्व मुक्ति की ओर देख रहा है, साथ ही प्रत्येक प्राणी अपनी शृंखला से भी कितना प्रगाढ़ प्रेम रखता है?

यह है सर्वोपरि विरोधाभास, और प्रकृति की अटपटी गुंथन। जन्म के बन्धन को मनुष्य चाहता है, इसी लिए उसे जन्म के आगे आगे मृत्यु के फंदे में फंसना पड़ता है और इस बन्धन में बंधे बंधे ही उसे मुक्ति की अभिलाषा तथा आत्मसिद्धि की आवश्यकता भी अनुभव होती है।

मानव शक्ति चाहता है, इसीलिए उसे निर्बलता, अशक्ति के वशीभूत होना पड़ता है।

कारण यह है कि जगत सम्पूर्ण शक्ति की उत्ताल तरंगों से परिपूर्ण समुद्र है। ये तरंगें सतत् मिलती और परस्पर संघर्षित होती रहती हैं।

इन लहरों के मुख पर जो वास करना चाहता है उसे अन्य असंख्य लहरों के थपेड़ों की चोट खाकर मूर्च्छित होने को भी उद्यत रहना चाहिए।

मानव केवल सुख चाहता है, इसीलिए उसे दुःख तथा शोक की अंगुरी भी स्वीकार करनी पड़ती है।

निर्मल, विशुद्ध आनन्द तो केवल मुक्त और अनासक्त आत्मा को ही प्राप्त हो सकता है।

किन्तु मानव के अन्तर में रमी हुई जो वस्तु सुख की वाँछा करती है, वही चेष्टा करने वाली—दुःख सहन करने वाली—शक्ति भी है!

मनुष्य शान्ति के लिए तरसता है:—किन्तु साथ ही साथ वह अशान्त मन और दुःखित हृदय के अनुभव भी चाहता है!

'भोग' यह मानवमन के लिए एक प्रकार का ज्वर है और उसे शान्ति नीरस, पुनरुक्तिपूर्ण, जड़ता जैसी प्रतीत होती है।

मनुष्य स्थूल शरीर के बन्धनों को चाहता है, परन्तु साथ ही साथ वह अनन्त मन और अमर आत्मा की मुक्ति भी माँग रही है।

तो भी मनुष्य में कोई ऐसी वस्तु है जो इन समस्त विरोधों में आनन्द ले रही है।

केवल अमृतपान की वांछा ही मनुष्य को आकर्षित नहीं कर रही है, हलाहल विष भी उसे खींच रहा है।

ऊपर जिन विरोधों की चर्चा की गई है उनमें भी कुछ अर्थ है। इन विरोधों का भी आधार है! प्रकृति की प्रत्येक क्रिया में भी पद्धति और नियम होते हैं। उसकी अनोखी वैचित्र्यमयी गुंथनें भी रहस्यमयी होती हैं।

अभी तक जीव ने अपने स्वत्व को नहीं खोजा है, इस बात की मृत्यु उसे बारंबार याद दिलाती है।

मानवजीवन के चारों ओर यदि यमराज का घेरा न होता तो मनुष्य अपूर्ण जीवन के बन्दीगृह में ही सड़ता रहता! किन्तु जीवन के साथ मृत्यु लगी होने के कारण मानव में सम्पूर्ण जीवन का आदर्श जागृत होता रहता है और उस आदर्श जीवन को प्राप्त करने के साधनों की वह शोध करता है।

निर्बलता भी अपनी शक्ति से इसी प्रकार का प्रश्न करती है। शक्ति तो जीवन की लीला है, शक्ति द्वारा ही जीवन और उसके आविर्भाव का मूल्य आंका जाता है।

सक्रिय जीवन के पीछे दौड़ती हुई मृत्युलीला का नाम ही निर्बलता है। जीव की प्राप्त की हुई शक्ति की सीमाओं को वह तोड़ डालती है।

दुःख तथा शोक द्वारा प्रकृति आत्मा को याद दिला रही है कि "जो सुख तू इस समय भोग रहा है, वह आध्यात्मिक आनन्द के परिमाण में केवल दारिद्र्य् और निर्बलास्पद मात्र है।

प्रत्येक दुःख और घृणास्पद हिंसा में आनन्द की परिसीमा छिपी हुई है और विश्वव्यापी आनन्दज्योति के सम्मुख हमारा महान् से महान् सुख, सूर्य के समक्ष दीपक के समान भी नहीं है।

इस छिपे हुए आनन्द को प्राप्त करने के लिए ही तो मानवी आत्मा को महान् यातनाएं, दुःख और रोमांचित कर देने वाले क्रूर अनुभव करने पड़ते हैं।

हमारे सक्रिय आधार और प्रकृति में व्यक्त होनेवाली अशान्ति क्रान्ति द्वारा प्रकृति हमें समझाती है कि तेरी वास्तविक प्रतिष्ठा 'शान्ति' में बसी हुई है' और 'उच्छृंखलता—अशान्ति तो आत्मा के साथ एक व्याधि है!'

———

मौनः—एक प्रयोग।

(श्री विजयकुमार मुंशी बी० ए० एल० एल० बी०)

मौन अपने सात्विक और बौद्धिक अर्थ में एक विरक्ति है, एक साधना है। मौन वह अमोघ अस्त्र है जिसके द्वारा हम विभिन्न कुविचारों को समाप्त कर सकते हैं। मौन वह प्रतिबिम्ब है, जिसमें हम आत्मस्वरूप के वास्तविक रूप को पहिचानने का प्रयास करते हैं। अब हम मौन होते हैं, तो हमारा मस्तिष्क अधिक तीव्रता से अपना कार्य करता है। इस कारण विचारों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए मौन सर्वथा आवश्यक है।

जब हम आशातीत प्रसन्नता से विहंस उठते हैं, या जब हम अकथनीय वेदना या व्यथा से आक्रान्त हो जाते हैं, तो हमें एकान्त अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। एकान्त मौन का विकसित स्वरूप है जहां मौन से सीधा सम्बन्ध हमारे मन और वाणी से होता है, वहां एकान्त का सम्बन्ध वाह्य वातावरण से होता है और मौन दोनों ही साधन या चिन्तन में सहायक होता है।

जीवन की सुखद या दुखद अनुभूतियां चिंतना के ओजस्वी पानी में लय होकर निखार पाती हैं। मौन चिंतना का सूचक है। वह हमारी विचार शक्ति को केन्द्रीभूत करता है।

सामाजिक जीवन में अधिक मौन एक अभिशाप है। राजनैतिक नेताओं महान् लेखकों और पत्रकारों में मौन प्रायः वरदान रूप ही देखा गया है। सौदागर यदि कम बोलता है, तो वह अपना सौदा कदापि नहीं बेच पाता। मौन भिखारी से भीख की कला में दक्ष भिखारी पर्य्याप्त कमा कर भीख को जीवन का पेशा बना लेता है। राजनैतिक नेताओं और कलाकारों में प्रायः अधिक बोलने की प्रवृत्ति नहीं होती। मौन से हृदय की सृजनात्मक वृत्तियां सदा क्रियाशील होती हैं। ———

शरीर पर विचारों का प्रभाव

(श्री विश्वामित्र वर्मा हमीरा)

———

यदि कोई अपने आपको आरोग्य, सुन्दर, युवा, प्रसन्न और बलवान मानता है तो वह निरोग, सुन्दर, युवा, प्रसन्न और बलवान रहता है, और जो अपने को रोगी, कुरूप, वृद्ध, निर्बल और अप्रसन्न मानता रहता है तो वह वैसा ही बनता है। मानसशास्त्र का यह नियम है कि मनुष्य अपने आपको जैसा समझता है वैसा ही बनता है। सुनने में तो अचंभा होता है पर बात बिलकुल सच है। बड़े विद्वानों ने जीवन में अनुभव करके इस नियम को सत्य पाया है। प्रेम के भाव से चेहरा चमकने लगता है, भय से खून जम जाता है, चिंता से सारा शरीर मुर्दार बन जाता है-घृणा से सिर में दर्द हो जाता है—मैथुनेच्छा से क्षय हो जाता है। द्वेष, ईर्षा आदि के भाव शरीर की धातुओं को सुखा देते हैं-लोभ जठराग्नि को मन्द कर अजीर्णता उत्पन्न करता है, क्रोध से शरीर का रक्त गरम हो जाता है-तथा आंखें लाल हो जाती हैं-रक्त व लार विषाक्त तथा चारों ओर का वातावरण भयानक हो जाता है। किसी घृणा दिलाने वाली वस्तु पर दृष्टि डालने से कोमल प्रकृति वाले पुरुष का जी मचलाने लगता है-यह सब केवल विचारों से और भावों से होता है। हम किसी उपन्यास में जासूसी, अथवा खून होने की घटना पढ़ते पढ़ते उसमें ऐसे लीन हो जाते हैं कि मानों हम भी उसी में सम्मिलित हों-और वे भाव हम में आ जाते हैं। हमें बड़ी जोर से भूख लगी हुई है-तुरंत एक तार आया जिसमें एक मित्र के मृत्यु का समाचार है-हमारी भूख काफूर हो गई-जबरदस्ती भोजन खिलाया भी जाय तो गले नहीं उतरता-ऐसी अवस्था में अमृत भी विषतुल्य प्रतीत होता है।

जो बात एक बार मन में आकर बार बार चला करती है वह विश्वास के रूप में दृढ़ होकर मनमें अपना स्थान जमा लेती है और शरीर के संबंध में जिसका जैसा विश्वास जम जाता है वैसे ही लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। मनुष्य जिस एक बात को स्वीकार कर लेता है वे ही बातें बार बार उसके मनमें आती हैं। और जिन बातों को वह अस्वीकार करता है अथवा जो बातें उसे अप्रिय हैं वे उसके मनमें नहीं आतीं। मनुष्य की भावना ही उसको फल देती है—"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।"

जिस वस्तु की तीव्र इच्छा होती है वह अवश्य प्राप्त होती है-यह प्रकृति का नियम है। प्रकृति के भण्डार में से तुम्हें जिस वस्तु की आवश्यकता है उसकी प्राप्ति के नियम जानो। उनमें से सबसे प्रधान नियम यह है कि जिस वस्तु को तुम प्राप्त करना चाहो उसके लिए एक वाक्य बना लो जिसे अंग्रेजी में (*Affirmation*) स्वीकृति कहते हैं और मान लो कि तुम्हें वह वस्तु प्राप्त होगई—उसी वाक्य का मानसिक जप करते रहो, ईसामसीह ने कहा है—विश्वास रखो कि "मैं पागया हूं" तो तुम पा जाओगे।

इस अभ्यास से तुम्हारी आवश्यकतायें आप ही आप तुम्हारी ओर आकर्षित होने लगेंगी-और कभी कभी आवश्यकता की ओर तुम्हें खिचकर जाना पड़ेगा-फिर तुम्हें इस सत्य पर विश्वास हो जायगा।

विचारों के कारण मनुष्य के शरीर में एक ऐसी आकर्षण शक्ति भरी हुई है और शरीर के चारों ओर निश्चित सीमा तक प्रवाहित होरही है और उस सीमा के अन्दर आने वाले प्रत्येक मनुष्य को प्रभावित करती है जो संसार की समस्त विद्युत् तथा आकर्षण शक्ति से भिन्न है। यह आकर्षण अथवा विद्युत् शक्ति हमारे विचारों पर निर्भर है और विचारों की सबलता, निर्बलता, दृढ़ता, अस्थिरता आदि की न्यूनाधिकता के अनुसार उत्पन्न और संचालित होती है तथा उसी मात्रा में दूसरों को प्रभावित करती है अथवा स्वयं प्रभावित होती है। दूसरों को

प्रभावित करने के लिए अथवा स्वयं आनंद और स्वास्थ्य लाभ करने के लिए हंसमुख रहना अति आवश्यक है। लोग उदास मनुष्यों से मिलना बहुत कम पसंद करते हैं-वे चाहते हैं प्रसन्न मन वाले मनुष्य में और कोई सद्गुण चाहे न हो परन्तु जिसका चेहरा हंसमुख, प्रसन्न और मुस्कराता हुआ रहता है वह अपनी आवश्यकताओं को सहज में सिद्ध कर लेता है, दूसरों पर अपना अच्छा प्रभाव डालता है। सारा जगत् उस विद्वान् और बुद्धिमान् मनुष्य को चाहता है जो अलौकिक शक्तियों के साथ मिलनसार भी हो-ऐसे मनुष्य को संसार शीघ्र ही खोज निकालता है—जो लोग सब लोगों से हेल मेल नहीं रखते-अथवा जिनमें मेल रखने की योग्यता नहीं है वे सचमुच अपनी बड़ी हानिकर रहे हैं और इसीलिए बहुत कम प्रसिद्ध और सफल होते हैं। तुम्हारी उदासी, अप्रसन्नता का कारण तुम्हारा अज्ञान और नासमझी है। तुम सदा नई नई इच्छाएं पैदा करते हो-नई नई आवश्यकताएं बढ़ाते हो-पर उनके इच्छाओं और आवश्यकताओं के पूर्ण न होने पर दूसरों पर दोषारोपण करते हो-अपना दोष नहीं देखते-देखो तुम्हारी उदासी और अप्रसन्नता इसका मुख्य कारण है। अतः आज से हंस मुख रहने का निश्चय करो।

भूतकाल की कोई आनंदप्रद घटना का मानसिक चित्र रखो और हंसना आरंभ करो-अपने मन में ऐसे विचार लाओ जिनसे तुम्हें मुस्कराहट आवे अथवा हंसी आवे। हंसने से रक्त संचालन तीव्र वेग से होने लगेगा-पाचनयंत्रों के विशेष प्रकार की गति होती है मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं में भी एक प्रकार की स्फूर्ति पैदा होती है।

एकान्त स्थान में सुबह या सायंकाल को जाओ-एक आइना साथ लेते जाओ—आइने में अपना प्रतिबिम्ब देखो और मुस्कराओ हंसो कुछ समय तक रोज इस प्रकार करते करते कुछ दिनों में मुस्कराना तुम्हारा स्वभाव हो जायगा-इससे आनन्द का जो अनुभव तुम्हें होगा वह अवर्णनीय होगा-आनन्द के और सुख के साधन संसार के स्थूल-अनित्य पदार्थों के मत खोजो और न पैसे खर्च करो न समय बरबाद करो यह एक ऐसा साधन है कि सहज में ही तुम्हें बिना एक पाई खर्च किये चाहे जब वह आनन्द मिल सकता है-बाह्य संसार में जो आनन्द तुम खोजते फिरते हो-उससे इसकी तुलना करो-तुम्हें मालूम होगा कि मुस्कराहट में-सांसारिक आनन्द की अपेक्षा न जाने कितने गुना अधिक अलौकिक सुख और लाभ है। धीरे धीरे यह मुस्कराहट तुम्हारे स्वभाव में परिणत हो जायगी और जिन लोगों से तुम्हारा परिचय होगा वे लोग भी तुम्हारे साथ ही इस आनन्द धारा में तैरेंगे फिर देखो तुम्हारी वाणी में कितनी मधुरता और आकर्षणशक्ति है-लोगों के झुण्ड के झुण्ड तुम्हारी ओर आकर्षित होते चले आवेंगे-उन पर तुम्हारे मीठे स्वभाव की अमिट मधुर छाप लग जायगी-फिर तुम्हें सफलता मिलते देर नहीं लगेगी।

उदास और रोते हुए मनुष्य का भी रुख तुम्हारे तेजस् के भीतर आते ही बदल जायगा और वह अपनी चिंता भूल जायगा-फिर तुम्हें मालूम पड़ेगा कि तुमने अपने मधुर मुस्कान द्वारा उसके भाव को बदल कर उसका कितना उपकार किया है-इससे तुम्हारा भी उत्साह बढ़ेगा।

तलवार की कीमत म्यान से नहीं बल्कि धार से होती है। इसी प्रकार मनुष्य की कीमत धन से नहीं, सदाचार से आंकी जाती है।

+ + +

कुपथगामी मनुष्यों के दोषों को उसके परिवार के सामने या उसके संबन्धी के सामने प्रगट करना उचित नहीं है, उचित अवसर और एकांत स्थान पाकर उसे समझाना चाहिये।

+ + +

मनुष्य घोर आपत्तियों से नहीं मरता, वे तो उसके जीवन का निर्माण करती हैं।

दार्शनिक विकृतियों का परिमार्जन आवश्यक है।

शुद्ध दर्शन वह है जो मानव प्राणी को पाशविक वृत्तियों से ऊंचा उठाता है, संयम सिखाता है, दूसरों के पक्ष में अपने स्वार्थों का त्याग करने की प्रेरणा देता है, उन्नति के लिए प्रोत्साहित करता है, भय और प्रलोभनों में फिसलने नहीं देता, भविष्य को आशापूर्ण दिखाता है, निरर्थकता से बचा कर शक्तियों को उपयोगी कार्यों में नियोजित करता है और तृष्णा एवं असफलता की अशान्ति से बचाकर अन्तःकरण को शान्ति तथा सन्तोष से अच्छादित रखता है। दर्शन का यही उद्देश्य है इसी उद्देश्य के लिए उसका जन्म हुआ है। मानव तत्व के विज्ञानी आचार्यों ने मनुष्य को अनेक प्रकार के बाह्य एवं आन्तरिक संघर्षों, अभावों, क्लेशों से बचाने के लिए ऐसी विचार प्रणाली का आविर्भाव किया था जिस सड़क पर अपने मस्तिष्क को चला देने से वह उधर ही बढ़ता है, जिधर व्यक्ति तथा समाज की सुख शान्ति की निर्भर है।

इस दृष्टि से हिन्दू दर्शन, हिन्दू संस्कृति का विश्व के ज्ञान साहित्य में अनुपम स्थान है। वेद, शास्त्र, स्मृति, उपनिषद, योग, दर्शन, धर्म, कर्मकाण्ड, आदि के द्वारा मनुष्य को सोचने का एक ऐसा ढंग बनाया गया था जो उसको स्वस्थ, सुदृढ़, सम्पन्न, सदाचारी पराक्रमी, उत्साही, तेजस्वी, आशावादी कर्मठ, प्रसन्न चित्त एवं लोकसेवी बनाता था। इस सांचे में ढल कर जो लोग दुनियां के सामने आते थे, वे बड़े पराक्रमी एवं महान होते थे उनकी कीर्तिध्वजा आज तक दुनियां के कोने कोने में लहरा रही है। उस प्राचीन संस्कृति के कारण ही आज इस गिरी हुई दशा में भी भारत वर्ष जगद्गुरु गिना जाता है। गीता का संसार भर में, विश्व की समस्त भाषाओं में जितना महत्व है, उसकी तुलना में अन्य ग्रन्थ नहीं ठहरते।

भारतीय दर्शन को उन्नत, सुरक्षित समृद्ध, सुदृढ़ एवं सुविस्तृत बनाने के लिए हमारे ऋषि मुनि अपने जीवनों को न्यौछावर करते थे, लौकिक भोग ऐश्वर्यों में लात मारकर वे दिन रात इस दैवी शक्ति के चरणों में अपना सर्वस्व आत्मोत्सर्ग करते थे, क्योंकि यह सम्पत्ति, आर्य जाति की प्राणशक्ति थी, इसी के ऊपर उसकी महत्ता निर्भर थी। उस थाती की रक्षा और वृद्धि करने वाले लोग 'ब्राह्मण' को महान गौरव शाली पद से सम्मानित किये जाते थे।

समय ने पलटा खाया। अव्यवस्था बढ़ी। ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व दोनों का ही स्खलन हुआ। उन्होंने अपनी मर्यादाएं शिथिल करदीं। आदर्श और परमार्थ प्रधान भारतीय विचार प्रणाली में 'भोग और स्वार्थ' का समावेश हुआ। यह भारी पत्थर जब पैरों में पड़ गये तो नीचे की ओर खिसलना निश्चित था। भारत अपनी महानता और साथ ही साथ शक्ति को खोने लगा। इतिहास साक्षी है कि उसे भीतरी अराजकता का बहुत समय तक सामना करना पड़ा और मुट्ठी भर विदेशियों की नगण्य शक्ति के सामने सिर झुकाकर राजनैतिक पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी, जो कि कल तक कायम रही।

इस बीच में बहुत चढ़ाव उतार हुए। जिन्होंने हमारे दुख, अपमान और उत्पीड़न की अवधि को विशेष रूप से लम्बा कर दिया और एक हजार वर्ष की लम्बी दुर्दशा के गर्त में गिरना पड़ा। विदेशी लुटेरों ने अपना आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् अपने शासन की जड़ें मजबूत करने का प्रबन्ध किया। जितनों को वे अपनी संस्कृति में लोभ एवं भय दिखाकर लेसकते थे—लिया—शेष को लुंज पुंज बना डालने के लिए उन्होंने उन विचारों को प्रोत्साहन दिया जिनके कारण किसी भी जाति का नैतिक पतन होता है और महत्वा-

कांक्षाएं नष्ट होती हैं। आज की राजनीति में भी यही होता है। जापान ने चीन को लुंज पुंज बनाकर अपनी दासता में लेने के लिए उसदेश में अफीम का प्रचार अपने ऐजेन्टों से कराया, ताकि चीन की प्रजा अफीम की पीनक में पड़ी रहे और जापानी उनके शिर पर छाजावें। इंग्रेजों ने भारतीयों को काला इंग्रेज बनाने के लिए ऐसी शिक्षा का प्रसार किये, जिसके द्वारा वे अपने प्राचीन आदर्शों को 'मूर्खता' समझें और पाश्चात्यों का अन्धानुकरण करने लगें। लार्ड मैकाले की योजना प्रसिद्ध है वे यहां के मस्तिष्कों को ऐसे रंग से रंग देना चाहते थे कि भारतीयों में वे आकांक्षाएं उत्पन्न ही न हों जिनकी प्रेरणा से स्वाधीनता, आत्म गौरव एवं अतीय महत्वाकांक्षा के भाव जाग्रत होते हैं। लार्डमेकाले की इंग्रेजी शिक्षा का आधार मजबूत था, परन्तु परिस्थितियों को क्या किया जाय, दो महायुद्धों में अन्तराष्ट्रीय परिस्थितियों ने, प्रजातंत्रीय प्रचण्ड विचार धाराओं ने, सारी दुनियां को ही उलट पलट कर दिया। यदि यह सब न हुआ होता तो निस्संदेह लार्ड मेकाले की योजना सफल होती और न जाने कितने लम्बे काल तक मुसलमानों की भांति इंग्रेजों के चंगुल में रहना पड़ता।

मुसलमानों ने जब देखा कि राजनैतिक प्रभुत्व जितनी आसानी से प्राप्त कर लिया गया, उतनी आसानी से सांस्कृतिक प्रभुत्व स्थापित नहीं किया जासकता। कत्लेआम कराके उन्होंने देख लिया कि लोग मृत्यु की तुलना में भी अपने धर्म को, संस्कृति को, अधिक महत्व देते हैं तो उन्होंने राजनीतिक दूरदर्शिता के साथ दूसरा मोर्चा स्थापित किया। बाहरी हमला अधिक सफल न होते देखकर उन्होंने भीतर से हमला करने की योजना बनाई। भारतीय दर्शन को विकृत करने के लिए उन्होंने अपने गुप्तचर लगाये। कितने ही मत, मतान्तर, सम्प्रदाय, ग्रन्थ, काव्य, सन्त, महन्त, इस प्रकार के उपजे जिनका उद्देश्य भारतीय दर्शन को दूषित एवं विकृत कर देना था ताकि उस विचार प्रणाली को अपनाने वाली प्रजा अपना नैतिक बल, पराक्रम, शौर्य, साहस एवं गौरव खोबैठे और फूट, घृणा, अपव्यय, भ्रम, व्यासन एवं अज्ञान के गहरे गर्त में गिर कर सब प्रकार दीन, हीन, एवं स्थायी रूप से पराधीन होजावे।

इतिहास हमें बताता है कि एक ओर हकीकतरायों बन्दा वैरागियों सिख गुरुओं के ऊपर कहर बरसता है और दूसरी ओर सन्त महन्तों पंडित विद्वानों को राज्यकोष को जागीर मिलती हैं, सम्मान प्राप्त होता है, उनकी महत्ता बढ़ाने के लिए बादशाह उनको असाधारण चमत्कारी घोषित करता है, राज्य के द्वारा गुप्त रूप से उन्हें प्रोत्साहन एवं पुरुष्कार मिलते हैं। दुर्योधन का अन्न खाकर भीष्म और द्रोण जैसों की बुद्धि विचलित होगई थी, फिर साधारण लोगों की तो बात ही क्या ? इसी काल में एक ओर पंडितों द्वारा अगणित ग्रन्थ रचे जाते हैं उन्हें अति प्राचीन एवं ऋषि प्रणीत घोषित किया जाता है, और दूसरी ओर ऋषिप्रणीत ग्रन्थ बादशाहों के हम्माम गरम करने के लिए जलाये जाते हैं।

इस काल को हम "अन्धकार युग" के नाम से पुकार सकते हैं। इस अन्धकार युग में हमारा चतुर्मुखी जातीय पतन हुआ। दर्शन ने परोक्षरूप से विदेशियों का आश्रय ग्रहण किया तदनुसार यह पराधीन होकर सर्वनाशी अधःपात में लुढ़क पड़ा। अन्धकार युग ने हमें अनेकों विचित्र, विचार धाराएं, प्रथाएं, परम्पराएं, मान्यताएं दी हैं, जिनका वैदिक संस्कृति से कुछ भी मेल नहीं खाता। न वे विवेक संगत हैं, न मनुष्य को उत्कर्ष की ओर लेजाते हैं, इतना ही नहीं वे अनुगमन करने वालों को नीचे की ओर घसीटते हैं बौद्धिक दृष्टि से पराधीन बनाते हैं, एवं ऐसे कार्यक्रम उपस्थित करते हैं जिनमें उलझ जाने से ठोस समस्याओं की ओर ध्यान ही न जासके।

आज हम ऐसी अनेकों कुप्रथाएं हिन्दू समाज में [illegible]

जीवन भीतर ही भीतर खोखला होता जाता है। इन प्रथाओं का कोई लोकोपयोगी आधार नहीं, फिर भी वे प्राचीन परम्परा के नाम पर प्रचलित हैं। कितने ही व्यक्ति इन्हें शास्त्रोक्त एवं सनातन समझते हैं, उनके समर्थन में दो चार श्लोक भी जहां तहां से सुना देते हैं। ऐसे लोगों को समझना चाहिए कि आजकल जितनी प्रथाएं हमारे समाज में प्रचलित हैं वे सभी सनातन नहीं हैं और न संस्कृत भाषा में जो कुछ लिखा मिलता है वह शास्त्रोक्त है। तुलसी कृत रामायण में पिछले दिनों इतने क्षेपक लोगों ने जोड़ दिये थे कि वह मूल रचना की अपेक्षा करीब ड्योढ़ी बढ़ गई थी। सौभाग्य से तुलसीदास जी का समय अभी बहुत निकटवर्ती है और उनके हाथ की लिखी, तथा अन्य प्रामाणिक रामायणें मिल जाने से उन क्षेपकों को छाँट दिया गया, यदि समय अधिक बीत गया होता तो तुलसीकृत रामायण के अतिरिक्त—अनेक कवियों की रचना के लिए भी तुलसीदासजी को ही जिम्मेदार बनना पड़ता। प्राचीन ग्रन्थों में क्षेपकों की भरमार है और कितने ही लुप्त ग्रन्थों के स्थान पर अंधकार युग में लिखी हुई रचनाएं उसी नाम पर प्रसिद्ध की गई हैं। ऐसी दशा में हर संस्कृत वाक्य को शास्त्र वचन नहीं कहा जासकता। उसके लिए शास्त्र शोधक बुद्धि का आश्रय लेना पड़ेगा।

अन्धकार युग की परिस्थितियों ने हमारे दर्शन पर असाधारण प्रभाव डाला है। आज हम उसी रंगे हुए दर्शन को अपना 'आदि दर्शन' समझते हैं। अब हमें उसका परिशोधन और परिमार्जन करना होगा। ताकि इस नवचेतना के युग में अपना जातीय निर्माण मजबूत आधार कर सकें और अपनी लोक प्रसिद्ध संस्कृति का झण्डा हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर गाढ़ सकें। आइए, इस कार्य में आप भी सहायता कीजिए।

सौ हाथों से कमा और—
हजार हाथों से बांट।

(प्रो० मोहनलाल वर्मा एम० ए० एल० एल० बी०)

वेद का एक मन्त्र है—"शतहस्त समाहर, सहस्त्र हस्त संकिरः" अर्थात् हे ज्ञान के पथिको, हे कर्म मार्गियो तुम सौ हाथों से कमाओ, यथाशक्ति अर्थोपार्जन करो किन्तु उस माया के मोह में लिप्त न होओ, उस अर्जित धन को सद्कार्यों में, दूसरों की भलाई, ज्ञान यज्ञों, भूखे पीड़ित मानव समाज के हितार्थ व्यय करो। जो रुपये के अभाव में आत्मविकास नहीं कर पा रहे हैं, जिन्हें तुमसे अधिक धन की आवश्यकता है, उन सुपात्रों को हजार हाथों से बाँट दो। मुक्त हृदय से अपनी धर्म की कमाई में से दान दो।

दान एक ऐसा समर्पण है, जिससे धन सम्पत्ति घटते नहीं वरन् विद्युत् वेग से विकसित होते हैं। निस्वार्थ दान एक ऐसी सेवा है जिसका फल न केवल इस संसार में वरन् परलोक में भी प्राप्त होता है।

धन की उपयोगिता उसे सद् कार्यों में व्यय करने पर ही है। आप स्वयं उसका उचित उपयोग करें। यदि आप सदुपयोग करना नहीं जानते, तो ऐसे व्यक्तियों को दान दीजिये, जो यह कार्य उत्तम रीति से कर सकते हैं।

धन का सदुपयोग अनेक प्रकार से हो सकता है। अपने धन के कुछ भाग को दान में व्यय कीजिए। ऐसी संस्थाओं को दान दीजिए जो समाज सेवा का कार्य करती हैं। पुस्तकालयों में, औषधालयों तथा धर्मशालाओं में दान देकर आप पीड़ित मानवता की अच्छी सेवा कर सकते हैं। ज्ञान, भक्ति, कर्म का प्रचार करने वाली उच्चकोटि विश्वस्त संस्थाओं को सहायता प्रदान करना चाहिए। अनाथालयों में वस्त्र, अन्न इत्यादि उपयोगी वस्तुएं दीजिए। जहां तक बने पीड़ित जनता की सहायता कीजिए। यह स्मरण रखिये कि आपके दान से लोग निकम्मे, आलसी और मुफ्तखोर न बन जांय।

धर्म से स्वर्ग प्राप्ति।

पूर्व मीमांसा में भगवान जैमिनी मुनिने धर्म का लक्षण निम्न प्रकार किया है :—

चोदना लक्षणो धर्मः ॥ पू० मी० १।२

"धर्मका लक्षण प्रेरणा है।" अर्थात् अपनी अवस्था श्रेष्ठतर करने के लिये जो आंतरिक स्फूर्ति होती है, वह प्रेरणा है। जब यह प्रेरणा मनमें उत्पन्न हो जाती है, तब मनुष्य कर्म के लिये प्रवृत्त होता है, पश्चात् कर्म करता है और अपनी उन्नतिकी सिद्धि प्राप्त करता है। यह सब जिस प्रेरणा से होता है, वह धर्म की प्रेरणा है। अपनी स्थिति सुधारने का पुरुषार्थ करने की ओर प्रबल प्रवृत्ति होना ही धार्मिक प्रवृत्तिका लक्षण है।

धार्मिक वाङ्मय में "स्वर्ग और नरक" इन दो कल्पनाओं से मनुष्य की दो अवस्थाएं बतायीं हैं। साधारण लोग समझते हैं कि, स्वर्ग ऊपर है, नरक नीचे और हम बीच में हैं। अर्थात् तीन मंजिल का यह मकान है, बीच की मंजिल पर भूलोक है, ऊपर का मंजिल स्वर्गलोक है और निचला मंजिल नरक है, परंतु यह वास्तविक कल्पना नहीं है। स्वर्ग और नरक की वास्तविक कल्पना होने से ही धर्म की वास्तविक बात जानी जा सकती है।

"नर" शब्द मनुष्य वाचक है, और उसको अल्पार्थक 'क' प्रत्यय लग कर 'नर-क' शब्द हुआ है, इसका मूल अर्थ 'अल्प मनुष्य, छोटा आदमी, नीच मानव' है। इसके पर्याय शब्द ये हैं—

'नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः॥ अमर, १।६।१

नारक, नरक, निरय, दुर्गति ये चार शब्द नरक वाचक हैं। इन शब्दों में 'दुर्गति' शब्द दुष्ट अवस्था का वाचक स्पष्ट है। 'निरय' शब्द भी नीच अवस्था का द्योतक है। 'नरक' शब्द का अर्थ 'नीच मनुष्य' ऊपर दियाही है। इसी प्रकार 'नार-क' शब्द का अर्थ 'नीच मनुष्य समाज' है, क्यों कि (नराणां समूहो नारं) मनुष्य संघ का ही नाम 'नार' है। नरक वाचक ये शब्द मनुष्य की पतित अवस्था ही बता रहे हैं। मनुष्य की दुर्मति हीन अवस्था, पतित अवस्था, नीच स्थिति, सामाजिक अधोगति, राष्ट्रीय कष्टमय अवस्था आदि भाव 'नरक' शब्द में है। तात्पर्य पृथ्वी की निचली मंजिल का नाम नरक नहीं है और भूमिके नीचे कोई मंजिल है भी नहीं, परंतु मनुष्यों की पतित अवस्था का नाम ही नरक है, जिस अवस्था में रहने से मनुष्य हीन समझा जाता है, वह अवस्था नरक शब्द बता रहा है। धर्म का प्रेरणा लक्षण होने से धर्म मनुष्य को ऐसी उच्च प्रेरणा करता है कि मनुष्य का पतन न हो और मनुष्य नरक की दुर्गति में न गिरे। धर्म का यही कार्य है कि, वह मनुष्य के सामने उच्च आदर्श सदा रखे और कभी उसको गिरने न दे!

उक्त प्रकार नरक की ठीक कल्पना हो गई, तो स्वर्ग की कल्पना होने में देरी नहीं लगेगी। ब्राह्मणग्रंथों में इसका निर्वचन निम्न प्रकार आता है—

स्वः, स्वर्, सु-वर्, सुवर्ग। (ब्राह्मण निर्वचन)

अर्थात् (सु-वर्ग) उत्तम वर्ग ही स्वर्ग लोक है। वर्ग शब्द समाजवाचक किंवा संघवाचक है। उत्तम झुंड, उत्तम संघ, श्रेष्ठ जमाव, उच्च समाज आदि भाव 'सु-वर्ग' शब्द बता रहा है। 'सु-वर' शब्द 'उत्तम उच्च अवस्था' का आशय व्यक्त करता है। 'स्व-र्' शब्द 'अपना प्रकाश' अथवा अपना प्रभाव बता रहा है, और वही भाव अर्थात् वही आत्मत्व का भाव 'स्वः' शब्द में है। इसका तात्पर्य यह है कि, 'अपने उच्च प्रभाव का अनुभव' स्वर्ग में है, और 'अपनी हीन अवस्था की दुर्गति' 'नरक' अवस्था में है। एक अवस्था मानवी श्रेष्ठता की है और दूसरी अधोगति की है। अर्थात् ये दो नाम दो अवस्थाओं के हैं, न कि अन्य स्थानांतर के। 'नाक' शब्द स्वर्ग वाची है, उसका अर्थ (न+अ+क) नहीं है दुःख

पृथ्वी की साम्राज्ञी

(श्री मालकम आरपेटर्सन)

महाकवि होमर ने युद्ध, वर्जिल ने आयुध, होरेस ने प्रेम, दांते ने नरक, और मिल्टन ने स्वर्ग का गीत गाया। परन्तु मुझमें यदि इन सब सिद्ध कवियों की सम्मिलित प्रतिभा होती और मेरे हाथ में हजार तारों का तान पूरा होता तथा सारा संसार श्रोता बनकर सुनता तो मैं अपना हृदय खोल कर गौ का गीत गाना उसके गुण बखानता और उसकी महिमा का गान यावच्चन्द्र दिवाकर अमर कर देता।

यदि मैं मूर्तिकार होता और संगमरमर पत्थर में टांकी से अपने विचार मूर्तिमान कर सकता तो संसार की पत्थर की सब खानें छान कर विमलतम, शुभ्रतम, संगमरमर की पाटिया ढूंढ लाता और चन्द्र ज्योत्स्ना से पुलकित निरभ्र नील आकाश से मण्डित, किसी मनोहर बन में निर्मल जल के समीप पक्षियों के मधुर गुंजारव के बीच बैठकर अपने प्रेमधर्म के पवित्र कार्य में लग जाता। उस शीतल शुभ्र संगमरमर का सारा खुरदरापन अपनी छेनी से छीलकर उसे इतना कोमल बना लेता कि उसमें से मेरे मन की गौ की मूर्ति निकल आती। उसके विशाल करुणामय नेत्र होते, वह अपने उभरे स्तनों में भरा हुआ पुष्टिकर पेय पान करने की प्रतीक्षा में खड़ी और प्रेम से उस अमृत के लेने वालों को सुख, आरोग्य एवं बल का आशीर्वाद देती हुई देख पड़ती।

गौ बिना ताज की महारानी है, उसका राज्य सारी समुद्र वसना पृथ्वी है। सेवा उसका विरद है और जो कुछ वह लेती है, उसे सौ गुना करके देती है।

यदि आज संसार की सब गायें मर जायं या ठाठ हो जायं तो कल ही मानव जाति पर भयानक संकट आ पड़े। रेल की सड़कें, बैंक, कपास की फसल, इन सबके बिना हम लोग मजे में अपना काम चला सकते हैं, पर गौ के बिना मानव-जाति रोग, क्षय और अन्त में विनाश को प्राप्त होगी। गौ का हम वह सम्मान और स्तवन करें, जिसके वह योग्य है। मुझे आशा है कि ज्यों ज्यों हम लोग ज्ञान के आगे बढ़ेंगे, क्रूरता और स्वार्थपरता छोड़ेंगे, त्यों त्यों उन गौओं की हत्या करना और उनका मांस खाना भी त्याग देंगे, जो हमें बल देती, सुख पहुंचाती और हमारे बच्चों के प्राण बचाती हैं।

जिस अवस्था में, वह अवस्था स्वर्ग है। दुःख हीन अवस्था किंवा सुखमय अवस्था का नाम स्वर्ग है। सच्चा सुख अपनी उच्च अवस्था में ही होता है। अस्तुः इस प्रकार स्वर्ग की मूल कल्पना है।

धर्म प्रेरणा करके मनुष्य में ऐसा पुरुषार्थ करने की इच्छा उत्पन्न करता है कि, जिससे वह मनुष्य उच्च और श्रेष्ठ बनता चला जाता है, और पतित नहीं होता। इस प्रकार धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और धर्म का पालन न करने से पतित अवस्था का नरक भोगना पड़ता है। —वैदिक धर्म

विशेषांक शीघ्र ही देंगे।

अखंडज्योति जनवरी मास में एक छोटा सा विशेषाङ्क या विषयाङ्क कई वर्षों से निकालती आरही है। पर इस वर्ष स्थिति असाधारण है। कागज की कठिनाई ऐसी विचित्र है कि दो दो महीने तक एक रिम नहीं मिलती। दूसरी ओर हमें भी साम्प्रदायिक उपद्रवों से पीड़ित बन्धुओं की सेवा सहायता में अपना अधिकांश समय लगाना पड़ रहा है। ऐसी दशा में इस जनवरी में विशेषाङ्क न देकर आगामी किसी महीने में शीघ्र ही एक अच्छा विशेषाङ्क भेंट करेंगे। विषय ऐसा उत्तम रखा जायगा जिसकी उपयोगिता को पाठक एक स्वर से स्वीकार करेंगे। —संपादक

कान पर जनेऊ चढ़ाने का हेतु

मूत्रेतु दक्षिणे कर्णे, पुरीषे बाम कर्णके।
उपवीतं सदाधार्यं मैथुने तूपवीतिवत् ।।

आन्हिक कारिका-

मूत्र त्यागने के समय दाहिने कान पर यज्ञोपवीत को चढ़ाले और शौच के समय बांये कान पर रखें तथा मैथुन के समय सदा पहनता है वैसा ही पहने रहें।

मल मूत्र त्याग में अशुद्ध वायु का अशुद्ध जल अशुद्ध पदार्थ एवं अशुद्ध अंगों से यज्ञोपवीत का स्पर्श हो जाने की आशंका रहती है। किन्तु उपवीत की पवित्रता को सदा कायम रखना आवश्यक है इसलिये मल मूत्र त्याग के समय कान पर चढ़ाने का विधान है। कान पर लपेट लेने से उपवीत ऊंचा हो जाता है, कमर से ऊपर आ जाता है और उसके अपवित्र हो जाने की संभावना नहीं रहती।

ऐसा भी कहा जाता है कि कान के मूल में जो नाड़ियां हैं उनका मूत्राशय और गुदा से संबंध है। दाहिने कान की नाड़ी मूत्राशय के लिए गई है और बाँए कान की नाड़ी गुदा से संबंध है। मूत्र त्याग करते समय दाहिने कान को लपेटने से उन नाड़ियों पर दबाव पड़ता है फल स्वरूप मूत्राशय की नाड़ियां भी कड़ी रहती हैं। तदनुसार बहु मूत्र, मधुमेह प्रमेह आदि रोग नहीं होते। इसी प्रकार दाहिने कान की नाड़ियां दबने से कांच, भगन्दर, बवासीर आदि गुदा के रोग नहीं होते। कई सज्जन शौच जाते समय दोनों कानों पर यज्ञोपवीत चढ़ाते हैं उनका तर्क यह है कि मल त्याग के समय मूत्र विसर्जन भी होता है, इसलिये दोनों कानों पर उपवीत को चढ़ाना चाहिये। मैथुन के समय कान पर भले ही चढ़ाया जाय पर अशुद्ध अंगों से ऊंचा अवश्य कर लेना चाहिये।

क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते।
पतितानां चसम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।।

पाराशर स्मृति ७।३८

अर्थात्—छींकने पर, थूकने पर, दांतों से किसी अंग के उच्छिष्ट होजाने पर झूठ बोलने और पातकों के साथ संभाषण करने पर अपने दाहिने कान का स्पर्श करें।

छोटी मोटी अशुद्धताएं कान का स्पर्श करने मात्र से दूर हो जाती हैं। कान को छूने पकड़ने या दबाने से भूल सुधरने का प्रायश्चित होने का सम्बन्ध है। बालक के कान पकड़ने का अध्यापकों का यही प्रयोजन होता है कि उसके देवत्व का और मनोबल का विकाश हो। कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाने से भी सूक्ष्म रूप से वही पयोजन सिद्ध होता है। इसलिए भी मलमूत्र के समय उसके कान पर चढ़ाने का विधान है।

आदित्यावसवो रुद्रा वायुरग्निश्च धर्मराट्।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ।।

शांख्यायन—

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा।
सर्वे देवास्तु विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ।।

आचार मयूख—

प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे वसन्ति मुनिरब्रवीत ।।

पराशरः

उपरोक्त तीन श्लोकों में दाहिने कान का पवित्रता का वर्णन है। शाङ्ख्यायन का मत है कि आदित्य, वसु, रुद्र, वायु और अग्नि देवता विप्रके दाहिने कान में सदा रहते हैं। आचार मयूखकार का कथन है-अग्नि, आप, वेद, सोम, सूर्य, अनिल तथा सब देवता ब्राह्मण के दाहिने कान में निवास करते हैं। पराशर का मत है कि गंगा आदि सरिताएँ तीर्थ गण दाहिने कान में निवास करते हैं। इसलिए ऐसे पवित्र अंग पर मलमूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत को चढ़ा लेते हैं जिससे वह अपवित्र न होने पावे।

पण्डित कौन है ।

(ले० पं० तुलसीराम शर्मा वृन्दावन)

'पण्डा आत्मविषया बुद्धिः येषांतेहि पण्डिताः'
(गीता० २।११ शांकर भाष्य)

आत्म विषयक बुद्धिका नाम पण्डा है और वह बुद्धि जिनमें होवे पण्डित हैं।

सत्यं तपोज्ञान महिंसताच विद्वत्प्रणामं च सुशीलताच एतानि। योधारयते सविद्वान् न केवलंयः पठतेस विद्वान् ॥

—सुभाषितरत्न भाण्डागार

सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों का सत्कार और शीलता ये गुण जिसमें हैं वह विद्वान् (पण्डित) है केवल शास्त्र पढ़ने वाला नहीं।

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानिन सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पंडितलक्षणाम् ॥२८॥

—विदुर नीति अ० १

जो सुन्दर कर्मों को करता है निन्दित कर्म नहीं करता, जो नास्तिक नहीं है और श्रद्धावान वह पंडित है।

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नाप कर्षन्ति सवै पंडित उच्यते ॥ २२ ॥

जिस पुरुष को क्रोध, हर्ष, घमण्ड, भय, संकोच एवं बड़प्पन की भावना—अपने कर्तव्य कर्म से लज्जा, नहीं हटा सकती हैं वही पंडित है।

आर्य कर्माणि रज्यन्ते, भूति कर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पंडिता भरतर्षभः ॥ ३० ॥

हे धृतराष्ट्र! पण्डित लोग शास्त्रानुकूल मार्ग पर चलते हैं और जिन कर्मों के करने से कल्याण प्राप्त होता है उनको करते हैं हितकारी वाक्यों को प्रेम से सुनते हैं और हितोपदेष्टा का सत्कार करते हैं।

पठकाः पाठकाश्चैव येचान्ये शास्त्र चिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः ॥

—म० भा० वन० ३१३।११०

पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और शास्त्र के चिन्तक ये सब एक प्रकार से व्यसनी हैं परन्तु जो शास्त्र में लिखे पर चलने वाला है वह पण्डित है।

मातृ वत्परदाराणि परद्रव्याणिलोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पण्डितः ॥

—सुभाषितरत्नभांडागार

पराई स्त्रियों को माता के समान मानता हो पराये धन को मिट्टी समझता हो सारे प्राणियों को अपने समान अर्थात् उनके दुख में दुख सुख में सुख मानता हो वह पंडित है।

नपंडित मतोराम बहु पुस्तक धारणात्।
पर लोक भयं यस्यतमाहु पंडितं बुधाः ॥

—विष्णु धर्मोत्तर पु० ३।५१।१३

हे राम! बहुत पुस्तक पढ़ने से पंडित नहीं होता, जिसको परलोक का भय है अर्थात् पाप-कर्म से बचा हुआ है इसीको बुद्धिमान पंडित कहते हैं।

आत्मार्थं जीव लोके ऽस्मिन्कोन जीवति मानवाः।
परं परोपकारार्थंच यो जीवति स पंडितः ॥

अपने लिए तो इस संसार में कौन नहीं जीता अर्थात् सभी जीते हैं। परन्तु जो परोपकार के लिए जीवित रहता है वह पंडित है।

युध्यन्ते पक्षि पशवः पठन्ति शुक सारिकाः।
दातु शक्नोति यो दानं स शूरः स च पंडितः ॥

लड़ते तो पशु पक्षी भी हैं और पढ़ने तो तोता मैना भी हैं, इसलिए केवल शास्त्रार्थ या पठन पाठन की योग्यता से कोई शूर वीर नहीं होता जो दान देसकता है-अपनी शक्तियों को परमार्थ में लगा सकता है वही शूर है और वही पंडित है।

सर्वनाश समुत्पन्नेह्यर्धंत्यजति पंडितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं सर्व नाशो न जायते ॥

सर्वनाश सामने आने पर पंडित लोग आधा त्याग देते हैं और आधे से कार्य करते हैं जिससे सर्वनाश नहीं होता।

संत कबीर ने पंडित की बड़ी अच्छी परि-भाषा की है—

पोथी पढ़ि पढ़ि जगमुआ पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ॥

सोऽहम् का अजपा जाप।

नासिका द्वारा श्वांस भीतर से बाहर और बाहर से भीतर आती जाती रहती है। जब वायु भीतर जाती है—पूरक होता है—तो उस समय "सो" की सूक्ष्म ध्वनि की झंकार होती है। थोड़ी देर जब तक सांस भीतर रुकती है-कुंभक होता है—उतनी देर 'अ' शब्द की झंकार रहती है। इसके पश्चात् जब वायु लौट कर बाहर आता है—रेचक होता है-उस समय 'हम्' शब्द प्रतिध्वनित होता है। इस प्रकार एक पूरी स्वांस के आवागमन में 'सोऽहम्' का एक पूरा उच्चारण प्रकृति द्वारा शरीर में स्वयंमेव निरन्तर होता रहता है। इसे 'अजपा जाप' भी कहते हैं।

यों अनेकों मंत्र हैं उनके फल अनेक हैं, उनकी साधना विधियाँ भी पृथक पृथक हैं। इन मंत्रों का विनियोग अनुष्ठान, जागरण, उत्थापन विभिन्न प्रकार से होता है। जिसकी शिक्षा अनुभवी गुरु द्वारा होनी चाहिए। अविधि पूर्वक जपे हुए मंत्र कई बार उलटा परिणाम उपस्थित करते हैं। अजपा जाप की 'सोऽहम्' साधना में इस प्रकार की कठिनाई नहीं है।

इस साधना के लिए जब भी अवसर और अवकाश हो। शान्त चित्त से मन को एकाग्र करना चाहिए। आंखें बन्द करके हृदय कमल में स्थित सूर्यचक्र का ध्यान करना चाहिए, यह चक्र सूर्य के समान प्रकाशवान है। ध्यान करने से धीरे धीरे उसकी ज्योति बढ़ती हुई ध्यान में दृष्टि गोचर होती जाती है।

मनको हृदय स्थान पर एकाग्र करने से श्वांस भीतर जाने के साथ 'सो' की, रुकने के साथ 'अ' की, बाहर निकलने के साथ 'हम्' की, ध्वनि होती है। इन तीनों ध्वनियों को ध्यान पूर्वक सूक्ष्म कर्णेन्द्रियों से सुनने का प्रयत्न करना चाहिए। आरंभ में यह शब्द ध्वनि बहुत ही मंद में बन्द भी होजाती है। पर लगातार ध्यान एकाग्र करने से फुफफुसों में वायु के आकुंचन प्रकुंचन के साथ साथ 'सोऽहम्' की ध्वनि स्पष्ट रूप से ध्वनित होती हुई सुनाई पड़ती है।

इस श्रवण से अपने आप प्रकृति द्वारा होने वाले अजपा जाप में साधक सम्मिलित होजाता है। और उसे किसी विशेष विधि विधान या अनुष्ठान के करने की आवश्यकता नहीं होती। इस निरीक्षण में जैसे जैसे चित्त की स्थिरता होती है वैसे ही वैसे आत्मिक शक्तियों का जागरण होता चलता है। चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं, यह निरोध इस अजपा जाप द्वारा बड़ी उत्तमता से होता है और स्वल्प श्रम से योग साधना के महान लाभों की प्राप्ति होती है।

'सोऽहम्' का अर्थ है-'वह आत्मा-परमात्मा-मैं हूं' अपने में ईश्वरीय भाव की प्रतिष्ठा करने से आत्मा में परमात्मा की झांकी होने लगती है और आत्म दर्शन का समाधि सुख प्राप्त होने लगता है।

अजपा जाप जितना सुगम है उतना ही उत्तम भी है। इसका आश्रय लेने वाले साधक की आत्मोन्नति बड़ी शीघ्रता से होती है।

प्रेम का दर्जा बल से अधिक है, ऊंचा है। बल जहां हारता है, प्रेम वहां सफल होता है। बल-प्रयोग में हराने का भाव होता है, प्रेम-प्रयोग में सुधारने का।

\+ + +

जो जितना ही विनयी होगा, उसकी वाणी और कृति में उतना ही बल, आकर्षण और प्रभाव होगा।

\+ + +

अपने को तो हारना भला है, जगत को जीतने दो। जो हारता है वह हरि से मिलता है और जो जीतता है वह यम के द्वार पर जाता है।

आत्म समर्पण का अश्वमेध।

दो सच्ची आत्माओं का सत्कार्य के लिए मिलन होना अश्वमेध कहलाता है। ऐसे अश्वमेघों की महिमा अपार है। प्रसिद्ध है कि दो सजीव आत्माएँ-एक और एक मिलकर ग्यारह-बनती है। सत कार्य के लिए श्रेष्ठ आत्माओं का सच्चा मिलन तो १११ एक सौ ग्यारह बन जाता है और उनके द्वारा अद्भुत शक्ति का आविर्भाव होता है। इस तत्व को समझ कर विवेक वान व्यक्ति अपनी न्यून-भौतिक शक्ति को अधिक श्रेष्ठ, अधिक सूक्ष्म शक्ति के साथ नियोजित कर देते हैं। इसे आत्म समर्पण भी कहते हैं।

संकीर्णता, तुच्छता और अदूर दर्शिता के कारण मनुष्य अपने 'अहम्' को बहुत ही छोटी सीमा में केन्द्रित करता है। वह सोचता है कि मैं पृथक रहूं अपने कार्य प्रथक रूप से करूं। वह नहीं जानता कि प्रथकता की व्यवस्था में इतनी शक्ति खर्च होजाती है कि अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करने का बहुत ही कम अवसर शेष रह जाता है। सुरक्षा और उन्नति के लिए उसे स्वयं प्रयत्न करने पड़ते हैं। फल स्वरूप बोझ इतना बढ़ जाता है कि उसके भार का दवाव ही मानसिक शान्ति को खाजाता है। इस प्रकार संकीर्ण व्यक्तियों को न तो बड़प्पन मिल पाता है और न वे किसी महान कार्य में अपने जीवन का सदुपयोग कर पाते हैं।

अल्प योग्यताओं से महान कार्य करने की दूर दर्शिता जिनमें होती है वे अपनी डेढ़ ईंट की अलग मसजिद बनाने की अपेक्षा अपनी शक्तियों को किसी विशाल शक्ति स्रोत में जोड़ देते हैं। इस सम्मिलन से एक आश्चर्य जनक शक्ति का उदय होता है और उसके द्वारा बड़े बड़े कार्य पूरे होजाते हैं। जिनके हृदय तुच्छ स्वार्थों से संकुचित हैं, अपने पन का अहंकार जिनके शिर पर भूत की तरह छाया हुआ है वे ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाते हैं। परन्तु जिन्हें इस संकीर्णता की तुच्छता और सम्मिलन के महान लाभों का ज्ञान है वे अपने को अपने से बड़ी सत्ताओं के साथ जोड़कर महान कार्यों की पूर्ति का आयोजन करते हैं।

हनुमान जी ने राम के आगे आत्म समर्पण कर दिया-अपनी शक्तियों को उन्हें सोंप दिया। फलस्वरूप अलौकिक शक्ति का आविर्भाव हुआ। रामावतार की महत्ता में हनुमानजी का स्थान अत्यंत ऊंचा है। इस मिलन से उभय पक्षीय लाभ हुआ। यदि हनुमान सोचते कि राम के साथ मिलकर उनके कार्य में सहायक होने से मुझे क्या लाभ? मैं तो अपना अलग से कोई काम करूंगा, तो शायद वे अपने प्रयत्न से छोटा मोटा राज्य स्थापित कर लेते या और कोई सफलता पालेते पर रामचंद्रजीके सम्मिलनसे उन्हें जो अमर लाभ हुआ उससे उन्हें वंचित ही रहना पड़ता।

अर्जुन ने कृष्ण के आगे आत्म समर्पण किया। उनकी इच्छानुसार अपने को चलाया यही कारण है कि अर्जुन अमर होगया, जब तक सूर्य चन्द्र और पृथ्वी है तब तक उसका यशशरीर अमर रहेगा। यदि वह सोचता मैं किससे कम हूं, कृष्ण का गुलाम क्यों बनूं? अपना पुरुषार्थ ही प्रधान क्यों न रखूं? तो इस विचार धारा के अनुसार शायद वह कुछ सफलता प्राप्त भी कर लेता पर मामूली राजा या योद्धा से अधिक उसका कोई स्थान न बनता।

भामाशाह ने अपनी जन्म भर की गाढ़ी कमाई राणा प्रताप को समर्पित कर दी। इस समर्पण से विपत्ति ग्रस्त असहाय राणा का कलेजा ढाल होगया उनने इस शक्ति के द्वारा म्लेच्छों के दांत खट्टे कर दिये। यदि भामाशाह सोचते राना के आगे आत्मसमर्पण करने से मेरा क्या फायदा? इससे तो अच्छा यह है कि अपना नाम चलाने के लिए कोई स्मारक बनाजाऊं। यदि भामाशाह ऐसा करले तो संभव है उनका स्मारक जब तक बना रहता तब तक थोड़े से आदमी

उनके नाम की यदा कदा चर्चा कर लिया करते। पर आज उनका यश शरीर संसार में जिस प्रकार अमर हुआ तथा राणा प्रताप द्वारा जो महान कार्य सम्पादित हुआ वह न हुआ होता।

विश्व पुरुष महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व में सेठ जमनालाल बजाज ने अपने को मिला दिया। उनके गोद लिये हुए बेटे बन गये। इस आत्म समर्पण में उन्होंने जितना खोया उससे अधिक पाया। ऐसे अनेकों सेठ साहूकार हैं जो स्वतंत्र रूप से दान धर्म में जमुनालाल बजाज की अपेक्षा भी अनेक गुना धन व्यय करते हैं पर उनकी तुलना बजाज जी से नहीं होसकती। गान्धी के द्वारा जो महान् लोक हित हुआ उसके पीछे बजाज का कम हाथ नहीं था। वे सच्चे व्यापारी सिद्ध हुए—आत्म समर्पण करके उन्होंने अपना लोक, परलोक, गान्धी जी की शक्ति का अभिवर्धन, जनता का लाभ तथा विश्व में सतोगुण की अभिवृद्धि का महान अनुष्ठान किया। अपने अहंकार को, सबसे भिन्न रखने पर बजाज के द्वारा कुए बावड़ी, धर्मशाला, सदावर्त आदि का निर्माण हो सकता था, कुछ दिन तक इन स्मारकों द्वारा उनका नाम भी चल सकता था पर वे महापुरुषों की उसपंक्ति में बैठ कर अमर नहीं होसकते थे जिसमें कि आज हैं।

ईसा और बुद्ध के शिष्यों ने अपना अलग मजहब चलाकर स्वयं धर्म गुरु बनने की इच्छा नहीं की वरन् अपने को इन देवदूतों के आगे समर्पित कर दिया। उनके कार्य को आगे बढ़ाने के लिए देश देशान्तरों में अलख जगाया। आज इन धर्म वृक्षों की छाया में करोड़ों मानव प्राणी आत्म शान्ति का आस्वादन कर रहे हैं।

ऋण और धन विद्युत के दोनों तार स्वतंत्र रूप में कुछ नहीं, उनकी शक्ति कुछ नहीं, पर जिस क्षण वे दोनों मिल जाते हैं—एक महान् शक्ति शाली विद्युत धारा का संचार होता है। घातक शक्ति उपजती है। सोना और सुगंध मिल जाने से कुंदन बनता है। गंगा और यमुना का संगम होने का स्थान तीर्थ राज कहलाता है। इन दोनों नदियों के तटों पर अनेकों छोटे बड़े तीर्थ मौजूद हैं पर तीर्थ राज तभी बना जब वे दोनों आपस में मिलीं। रात्रि और दिन के मिलन को संध्या काल—ब्राह्म मुहूर्त कहते हैं। न दिन में न रात्रि में—ऐसा शुभ समय फिर कभी नहीं आता जैसा कि इस मिलन काल में होता है; रज और वीर्य के नन्हें से परमाणु आपस में मिलकर एक विशाल काय चैतन्य मानवभ्रूण की उत्पत्ति करते हैं। पति पत्नी का, भाई भाई का, माता पुत्र का, गुरु शिष्य का, मित्र मित्र का सच्चा मिलन दोनों पक्षों के अन्तःकरणों में जो गुदगदी उत्पन्न करता है उसका रस और महत्व अवर्णनीय है। रसायन विज्ञान के ज्ञाता जानते हैं कि दो मामूली वस्तुओं के मिलने से तीसरी कैसी कैसी अद्भुत वस्तुएं विनिर्मित होती हैं।

सत्कार्य के लिए, शुभ आयोजन के लिए जब समान विचारों की, समान हृदय की दो आत्माएं आपस में मिलती हैं तो वह एक अश्वमेघ होता है। यज्ञ में अश्व की आहुतिएक विशिष्ठ परिणाम उत्पन्न करती है। अपने को अश्व बनाकर सत्कर्म के लिए, शुभ आयोजन के लिए, श्रेष्ठ आत्माओं के अन्दर धधकते हुए यज्ञ में अपने आपको समर्पित करते हैं वे एक अध्यात्मिक अश्वमेघ का आयोजन करते हैं। जिसका फल समस्त विश्व के लिए कल्याण कारक होता है। आत्म आहुति का त्याग, अनेक गुने उच्च परिणामों के साथ उस होता के पास वापिस लौटता है।

अखंडज्योति ऐसे अश्वमेघों के स्वर्गीय दृश्य देखने के लिए आंखें पसार पसार कर चारों ओर देखती है और परमात्मा से प्रार्थना करती है कि प्रभु—भारतभूमि को ऐसा निर्बीज मत बनने दो

श्रेय और प्रेय।

(देवता स्वरूप भाई परमानन्दजी)

दो मार्ग हैं—एक प्रेय, जो बहुत प्यारा मालूम होता है, दूसरा श्रेय—जो प्यारी तो नहीं, किन्तु कल्याणकारी है। यदि कल्याण के मार्ग में वैसा ही सुख और आराम मिलता तो समस्त संसार उस मार्ग पर स्वयमेव चल पड़ता। तब धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए इतने बड़े ग्रन्थों और शास्त्रों की क्या आवश्यकता थी? और लोगों को धर्म मार्ग पर चलाने के लिए इतने ऋषि, मुनि और उपदेष्टा क्यों जोर लगाते? लोगों के सुधार के लिए इतनी सभाएं क्यों बनाई जाती?

यह सब इस लिए किया जाता है कि धर्म का मार्ग कठिन है। इस पर चलने में कष्ट होता है। मनुष्य-स्वभाव सुख चाहता है और जो बात उसे आराम और सुख देनेवाली मालूम होती है, वह उसी की ओर दौड़ता है। बच्चा दिन भर खेलना चाहता, पुस्तक को देखना नहीं चाहता। उसे खेलतमाशे और गप्पों में आनन्द आता है, वह उनमें ही लगे रहना चाहता है। दिन भर इधर उधर घूमता रहेगा, ताश खेलता रहेगा, पढ़ने का नाम न लेगा।

मनुष्य का चित्त उस बच्चे के चित्त के समान है। या उस बेलगाम घोड़े की तरह है, है, जो अपने मार्ग पर जाकर सवार को गड्ढे में गिराना चाहता है। इस चित्त को वश में करने के लिए शास्त्र रचे गए। आज शास्त्र की बात कौन सुनता है? सुन भी ली मानता कौन है? संसार-प्रवाह बड़ा जबरदस्त है। संसार की वासना हम में से अनेकों को बहा लिए जाती है।

बात यह है कि जो मनुष्य सच्चरित्रता के मार्ग पर चलते हैं, उन्हें समझ लेना चाहिए कि इस मार्ग पर चलने में उन्हें आराम या सुख नहीं मिलेगा। जो अपने व्यक्तिगत सुख को उद्देश रख कर जीता है, उसे धर्म का विचार छोड़ देना चाहिए। उसके लिए प्रेय-मार्ग अच्छा है।

अच्छा, यदि सच्चरित मनुष्य को सुख नहीं मिलता तो और किस होता है? तब उस मनुष्य को इससे क्या लाभ? हरिश्चन्द्र ने अपने सत्य पर दृढ़ रहने के लिए कितने कष्ट उठाए? उसे क्या सुख मिला? यदि हरिश्चन्द्र सुख चाहता तो क्या तरीका था? उसे सत्य को छोड़ देना चाहिए था, जैसा कि सांसारिक मनुष्य करते हैं। जब उनका मतलब होता है तब वे सच कह देते हैं और जब उनका झूठ से काम निकलता तब झूठ बोल देते हैं।

दूसरा दृष्टान्त हकीकात का लीजिए। उसे सुख किस बात में था? वह अपना धर्म छोड़ देता, उसे सब आराम मिल जाते और अपनी स्त्री के साथ रहकर वह दुनिया में आनन्द करता। व्यक्तिगत दृष्टिकोण से उसे सबसे बड़ा दुःख हुआ। तलवार से उसने अपना सीस कटवा दिया। किन्तु अपना धर्म बचा लिया।

वीर वैरागी को लीजिए। उसे पञ्जाब में आकर क्या सुख मिला? उसने अपनी गद्दी छोड़ वैराग्य का जीवन त्याग दिया, निशिदिन युद्ध में रहकर उसने अपने जीवन को दुःखमय बना लिया, और यदि अन्त में शहीद न होता तो आनन्द पाता! किन्तु हिन्दू धर्म कहां जाता? इन सबने अपने जीवन में कष्ट और दुःख सहते हुए अन्त में प्राण तक दे दिए! क्या यह सब कुछ योंही मूर्खता थी?

बात यह है। जो मनुष्य धर्म के मार्ग पर चलता है, वह स्वयं कष्ट ही उठाता है। किन्तु जब कोई दूसरों के लिए कष्ट उठाता है, तभी वह दूसरों का कल्याण करता है और दूसरों के कल्याण में उसका कल्याण होता है।

शिक्षा संस्थान का आयोजन।

कुछ दिन पूर्व तक अखंडज्योति कार्यालय में एक 'कर्मयोग विद्यालय' था, जिसमें सभी श्रेणी के लोग अपने व्यक्तिगत जीवन को शारीरिक, मानसिक और सांसारिक दृष्टि से सुख शान्तिमय बनाने की शिक्षा प्राप्त करने आते थे। कोई एक शिक्षा कोर्स इन सबके लिए नहीं था। छात्रों की इच्छा, आकांक्षा, और आवश्यकता के अनुरूप उनका पाठ्यक्रम एवं कार्यक्रम निश्चित किया जाता था। सर्वोपयोगी विषयों पर सबका शिक्षण साथ साथ होता था और व्यक्तिगत समस्याओं के सुलझाव का शिक्षण पृथक पृथक होता था। अखंडज्योति सम्पादक द्वारा ही इस विद्यालय के छात्रों की शिक्षा होती थी।

विद्यालय के नियम वही थे जो अपने घर में, घर वालों के लिए होते हैं। अखंडज्योति अपने पाठकों को अपना स्वजन, कुटुम्बी मानती है, उनके लिए क्या नियम बनाये? जो नियम अखंडज्योति सम्पादक के भाई, भतीजे, बुजुर्ग या रिश्तेदारों पर लागू होते हैं वही इन छात्रों पर भी लागू थे।

पिछले दिनों करीब दो सौ छात्र भारत के कोने कोने से इसमें शिक्षा प्राप्त करने आये। उन्हें यहां आने से जो लाभ हुआ, आने वालों की जीवन दिशा में जो परिवर्तन हुए, उनकी कठिनाइयों का जैसा सुन्दर हल हुआ, उसकी प्रशंसा करते करते वे शिक्षार्थी और उनके घर वाले थकते नहीं। जो लोग यहां के निकट सम्पर्क में रहे हैं और जिन्होंने शिक्षार्थियों के पिछले जीवन और नये जीवन का परिवर्तन प्रत्यक्षतः देखा है। वे इस विद्यालय को "मनुष्य ढालने का कारखाना" या 'मानसिक कायाकल्प' का अस्पताल कहा करते हैं। कई सज्जनों का तो विचार है कि यहां किसी मंत्र की शक्ति से लोगों के मस्तिष्क को पलट दिया जाता है। हम इन सब बातों को अत्युक्ति मानते हैं। उचित पथ प्रदर्शन और खरे व्यक्तित्व का जो प्रभाव दूसरों पर पड़ना चाहिए, उसी साधारण सी प्रक्रिया का लाभ यहां आने वाले सज्जनों को होता रहता है।

इन दिनों परिस्थितियां बड़ी विषम होगईं। खाद्य पदार्थ अत्यधिक मंहगे होगये, साम्प्रदायिक स्थिति से वातावरण अशान्त होगया, जिस किराये के मकान में विद्यालय था वह मकान मालिक ने छीन लिया। और भी अनेकों अड़चनें ऐसी आईं जिनके कारण विद्यालय को स्थगित कर देना पड़ा। प्रतिमास दर्जनों प्रार्थना पत्र शिक्षार्थियों के आते रहते हैं पर उन्हें अपनी विवशता बताते हुए अस्वीकृत ही करना पड़ता है। एक ओर छात्रों को होने वाले लाभ, मनुष्य जाति की सच्ची सेवा, अनेक अशान्त जीवनों का शान्ति की ओर अभिगमन, सात्विक गुणों का विस्तार और दूसरी ओर हमारी विवशताएं इनका द्वन्द्वयुद्ध हमारे मनोलोक में, जितने दिनों से विद्यालय बन्द है तब से लेकर अब तक बराबर होरहा है।

आज की संक्रान्ति वेला में कितने ही प्रश्न हमारे सामने हैं, इसमें एक प्रश्न हिन्दू तत्वों के संगठन, संवर्धन और संशोधन का है। गत अंक में, 'ब्राह्मणत्व और साधुता का जगारण' तथा 'इन प्रस्तावों पर विचार कीजिए' शीर्षक दो लेखों में कुछ कार्यक्रम उपस्थित किया गया था अखंडज्योति परिवार के कितनी ही उच्च आत्माओं ने उस कार्यक्रम को क्रिया रूप में सामने लाने की आवश्यकता का बड़े जोरदार शब्दों में प्रतिपादन किया है और हमें प्रेरणा की है कि मथुरा में एक शिक्षण संस्था फिर चलाई जाय। हम स्वयं भी इसको अत्यन्त महत्व पूर्ण समझते हैं, तदनुसार अखंडज्योति अगले वर्ष से अपने यहां एक शिक्षा संस्थान पुनः आरंभ करने जारही है। इसमें निम्न कार्यक्रम होगा।

(१) पहले जैसे कर्मयोग विद्यालय में व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा प्राप्त

करने के लिए छात्र आते थे—वे आवें। उनकी शारीरिक, मानसिक एवं सांसारिक आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें शिक्षा दीजावे।

(२) लोक सेवा द्वारा भी भगवान की प्राप्ति होसकती है और कर्मयोग द्वारा मुक्ति प्राप्त की जासकती है। इन सिद्धान्तों को सविस्तार शास्त्रीय पद्धति से साधु सन्यासियों परमार्थियों एवं लोक सेवियों के संमुख उपस्थित किया जायगा और उन्हें धर्म प्रचार एवं लोक सेवा की शिक्षा दी जावेगी।

(३) मंदिरों में देव मूर्तियों की शास्त्रीय विधि से पूजा करने के साथ साथ पुस्तकालय, औषधालय, विद्यालय, व्यायामशाला धर्म सभा इन पांच कार्यों को सुचारु रूप से चलाने वाले पुजारी तैयार करना।

(४) ऐसे पुरोहित और पंडित शिक्षित किये जायेंगे जो सब संस्कार भली प्रकार करा सकें और संस्कारों का महत्व तथा रहस्य यजमानों के हृदय पर अंकित कर सकें। त्यौहारों, पर्वों उत्सवों को ठीक रीति से मनवावें और उनके पीछे छिपी हुई महान् सांस्कृतिक परम्पराओं को समझावें। अपने यजमानों को सन्मार्ग पर चलाने के लिए प्रयत्न करें।

(५) साधारण विद्यार्थियों के लिए एक वर्ष का एक पृथक शिक्षा क्रम रहेगा। जिसमें उन्हें जीवन विज्ञान की शिक्षा दी जावेगी। स्वास्थ्य, मधुर भाषण, दाम्पत्ति जीवन, शिष्टाचार, स्त्र शिक्षा, संगीत, अर्थ उपार्जन के सिद्धान्त, माता पिता एवं बड़े बूढ़े का सम्मान, सदाचार, धर्म परिचय, दुर्गुणों का निवारण, शत्रुओं को परास्त करना आदि अनेकों जीवनोपयोगी तथ्यों की शिक्षा देकर उन छात्रों को ऐसा बना दिया जावेगा कि जिससे भी उनका व्यवहार होगा, वह सन्तोष और प्रसन्नता अनुभव किये बिना न रहेगा।

(६) नौ दिन का, आध्यात्मिक साधना शिक्षण—इसे नौ बार का आध्यात्मिक यज्ञोपवीत धारण भी कह सकते हैं—इस साधना शिक्षण से शिक्षार्थियों को आत्मिक शक्तियों की जागृति एवं अभिवृद्धि होगी।

(७) परामर्श के लिए आने वाले व्यक्तियों को—उनकी कठिनाइयों के हल करने और उन्नति का पथ प्रदर्शन करने की शिक्षा तथा सहायता।

(८) दूरस्थ व्यक्तियों की समस्याओं का पत्रोत्तर द्वारा सुलभाव करना।

(९) चलते फिरते पुस्तकालयों द्वारा जनता तक घर बैठे उत्तम शिक्षा पहुंचाना।

(१०) पर्चे, पोस्टर, चिट, पुस्तिकाएं, चित्र आदि द्वारा जगह जगह जनता के मस्तिष्कों में धर्म भावनाएं जागृत करना।

इस प्रकार दश मुखी कार्य क्रम के साथ इस वर्ष इस ब्रह्म विद्यालय को पुनः नई तैयारी के साथ चलाने की हमारी आन्तरिक इच्छा है। आज कल मथुरा में मकानों की समस्या अत्यन्त ही विकट है। किराये के लिए मकान मिलना दुर्लभ होरहा है, जैसे ही यह व्यवस्था हुई वैसे ही विद्यालय आरंभ कर दिया जायगा। जिन्हें उपरोक्त शिक्षाक्रम में किसी प्रकार की अभिरुचि हो वे आवश्यक जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें।

प्रकृति कहती है कि अपने से प्रेम करो। गृह-शिक्षा कहती है कि अपने कुटुम्ब से प्रेम करो। समाज कहता है कि अपने देश से प्रेम करो। पर सच्चा धर्म कहता है कि सब मनुष्यों से बिना किसी भेद-भाव के प्रेम करो।

\+ \+ \+

प्रकृति ने मनुष्य को दो कान दिये किन्तु जीभ एक ही दी। इस गुप्त संकेत का अर्थ ही यह है कि वह जितना सुने उससे कम बोले।

\+ \+ \+

मातृशक्ति की महानता।

(डा० गोपालप्रसाद 'वंशी', बेतिया)

मातृशक्ति (स्त्री) की महत्ता क्या है? प्राचीन काल के विद्वान और महात्मा लोग उसे किस दृष्टि से देखते थे? इन विषयों का ज्ञान कराने के लिये यह संग्रह किया गया है :—

ऋग् वेद—हे स्त्री, तू घर की मालिक बनकर जा। वहां जितने पुरुष हों, सबके साथ रानी की तरह बात चीत कर।

रामायण—स्त्री बन को भी राजमहल से अधिक सुन्दर बना देती है।

महाभारत—स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी है। उसकी सबसे बड़ी मित्र है। धर्म, अर्थ और काम का मूल है। जो उसका अपमान करता है, काल उसका नाश करता है। वह घर का धन और शोभा है। अतः उसकी सदा रक्षा करनी चाहिये। महाभाग्यवती और पुण्यात्मा स्त्री—पूजनीय है।

मनुस्मृति—जो पिता, भाई, पति और देवर कल्याण चाहते हैं, उनको अपनी पुत्री, बहिन, स्त्री और भौजाई का कभी अपमान नहीं करना चाहिए।

जहां स्त्रियों का पूजन होता है, वहां देवता निवास करते हैं। जहां उनका पूजन नहीं होता, वहाँ सब प्रकार के उत्तम कर्म भी निष्फल हो जाते हैं।

जिस घर में स्त्री, पुरुष से और पुरुष, स्त्री से संतुष्ट रहता है, वहां निश्चय नित्य कल्याण होता है।

स्वामी दयानन्द—भारत वर्ष का धर्म्म उसके पुत्रों के नहीं, उसकी पुत्रियों के प्रताप से स्थिर है। भारतीय स्त्रियों ने अपना धर्म छोड़ा होता, तो यह कभी का नष्ट हो गया होता।

दादाभाई नौरोजी—अपनी माता की देखरेख के कारण ही मैं अपने सहचरों के बुरे प्रभाव से बचा।

काम न करने वाला दस्यु चोर-डाकू होता है।

(सुश्री कैलाश वर्मा बी० ए० प्रिवियस)

वेद के वचन—"अकर्मा दस्युः" में गहरी सत्यता है। जो कर्म करता है, मेहनत और परिश्रम करता है, उसे ही जीवित रहने का अधिकार है। जो कर्म नहीं करता, मुफ्त का माल उड़ाना चाहता है, या दूसरों के अर्जित धन सम्पत्ति या श्रम पर गुजर करना चाहता है, वह उस चोर डाकू से कम नहीं, जो मुफ्त में अधर्म द्वारा दूसरे की धन सम्पत्ति हजम करता है।

अकर्मा व्यक्ति अपने शरीर से पूरा कार्य न लेने के कारण रोगी, दीन हीन अल्पायु बनता है, आलस्य के कारण उसमें नाना प्रकार के शारीरिक विकार घर कर लेते हैं। हम प्रायः देखते हैं कि अनेक मोटे पेट वाले सेठ प्रातः से सायंकाल तक दूकानों की गद्दी पर बैठे २ दिन काट देते हैं, शरीर से कोई भी कर्म नहीं करते, फलतः अनेक घृणित रोगों के शिकार बनते हैं। ये रोग एक दैवी सजा कहे जा सकते हैं। यदि हम अपने शरीर द्वारा कर्म करने की आदत डाल लें, तो निश्चय ही शारीरिक व्याधियों से मुक्त हो सकते हैं। स्वयं अपना कार्य करना, दूसरों के आसरे न रहना भी एक सन्यास है।

गीता का महान् सन्देश कर्मयोग है। एक सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि ने लिखा है—

कर्म ही है, बस जीवन प्राण,
कर्म में बसते हैं, भगवान्।

महात्मा गांधी के शब्दों में गीता का सन्देश केवल यही है—"कर्म बिना किसी ने सिद्धि नहीं जो कर्म छोड़ता है, वह गिरता है। कर्म करते हुए भी जो उसका फल छोड़ता है, वह चढ़ता है।" गीता कर्म को अनादि मानती है। हम कर्म मार्गी बन कर ही मानव जीवन में सुखी, स्वस्थ एवं शारीरिक दृष्टि से प्रसन्न बन सकते हैं।

जीवन का सदुपयोग।

(श्री स्वेटमार्डेन)

ईश्वर ने तुमको जीवन इस लिये प्रदान किया है कि तुम उसको मनुष्य जाति के हित में लगाओ और अपनी व्यक्तिगत शक्तियों को जाति गत शक्तियों के विकास का साधन बनाओ। जिस प्रकार एक बीज अपनी जाति की उन्नति के लिये अपने को गला देता है, उसी प्रकार तुम भी अपनी जातीय उन्नति के लिये स्वार्थ त्याग कर अपने को निछावर कर दो। तुम्हारा धर्म है कि तुम अपने आपको तथा दूसरों को शिक्षा दो, स्वयं योग्य बनने एवं दूसरे के योग्य बनाने का यत्न करो।

यह सच है कि ईश्वर तुम्हारे भीतर है। किन्तु वह सब मनुष्यों का (जो इस पृथ्वी पर निवास करते हैं) आत्मा है। ईश्वर उन सब जातियों के जीवन में है जो हो चुकी हैं, हैं या होंगी। उसकी सत्ता और उसके नियमों तथा अपने कर्तव्यों के विषय में जो सिद्धान्त मनुष्य जाति ने निश्चित किये हैं, पिछली जातियां क्रमशः उनका संशोधन करती चली आई हैं और आगे की जातियां भी बराबर उसी प्रकार करती चली जायेंगी। जहां कहीं ईश्वरीय सत्ता अपना प्रकाश करे, तुम्हारा धर्म है कि वहीं उसकी पूजा करो और उसकी ज्योति चमकाओ। सारा विश्व उसका मंदिर है और इस मंदिर को अपवित्र करने का पाप मनुष्य के माथे पर रहेगा जो उसकी पवित्र इच्छा के विरुद्ध संसार में कोई काम होता हुआ देखकर चुप बैठा रहेगा।

यह कथन युक्ति युक्त नहीं है कि हम निर्दोष हैं, दूसरे यदि पाप करते हैं तो हमारा इसमें क्या दोष? जब तुम अपने समीप या सन्मुख पाप होता हुआ देखते हो और उसके विरुद्ध चेष्टा नहीं करते तो तुम अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते। क्या तुम सत्य और न्याय का अनुगामी अपने को कह सकते हो? जब कि तुम देखते हो कि तुम्हारे सजातीय भ्राता, पृथ्वी के (जो हम सबकी माता है) किसी अन्य भाग में भ्रांति या अविद्या में पड़े अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। और तुम उनको उठाने के लिये कुछ सहारा नहीं देते?

तुम्हारे सजातीय भ्राताओं के नित्य आत्माओं में ईश्वर का प्रकाश धुंधला हो गया है। ईश्वर की इच्छा तो यह थी कि उसकी उपासना उसके आज्ञा पालन द्वारा की जावे, परन्तु तुम्हारे आस पास उसके कानून को तोड़ा जारहा है और उसकी अन्यथा व्याख्या की जारही है। उन लाखों मनुष्यों को (जिन पर ईश्वर ने अपनी इच्छा को पूरा होने का तुम्हारे समान भरोसा किया है) मनुष्योचित अधिकारों से वंचित किया जारहा है और तुम चुपचाप बैठे हो! क्या इस पर भी तुम यह कहने का साहस कर सकते हो कि तुम उस पर विश्वास रखते हो?

"ईश्वर एक है और सब मनुष्य ईश्वर के पुत्र हैं।" इन दोनों सच्चाइयों के प्रचार ने संसार की काया पलट दी और परस्पर सहानुभूति की सीमा पृथ्वी के इस छोर से उस छोर तक बढ़ा दी। मनुष्य के कर्तव्य जो कुटम्ब और देश के प्रति थे, उनमें मनुष्य जाति के प्रति कर्तव्य और बढ़ गये। तब मनुष्य ने माना कि मनुष्य चाहे कहीं पर हो, उसका भाई है, जो उसीके समान अविनाशी आत्मा रखता है। और उसी के सदृश्य अपने स्रष्टा की ओर जाना उसका उद्देश्य है, तथा उससे प्रेम करना, उसको धर्म की शिक्षा देना और जब कभी आवश्यकता हो, उसकी सहायता करना उस पर उचित ठहराया गया है।

मनुष्य सहस्र वार नीचे गिरता है, उसे सहस्रवार ऊंचे उठने का प्रयत्न करना चाहिये- प्रतिवार उस सीमा से कुछ अधिक ऊंचा, जहाँ से वह गिरा था। पूर्णता प्राप्त करने का यही अव्यर्थ साधन है। + +

अखंडज्योति द्वारा प्रकाशित अमूल्य पुस्तकें।

यह बाजारू पुस्तकें नहीं हैं। इनकी एक एक पंक्ति, गहरे अनुभव और अनुसंधान के साथ लिखी गई है। यह पुस्तकें सच्चे मित्र और पथ प्रदर्शक का काम देती है।

- (१) मैं क्या हूं ? ।=)
- (२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
- (३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
- (४) परकाया प्रवेश ।=)
- (५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की विद्या ।=)
- (६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
- (७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
- (८) भोग में योग ।=)
- (९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
- (१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
- (११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
- (१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
- (१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ? ।=)
- (१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
- (१५) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
- (१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ।=)
- (१७) गहना कर्मणो गति ।=)
- (१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश ।=)
- (१९) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
- (२०) शक्ति संचय के पथ पर ।=)
- (२१) आत्मगौरव की साधना ।=)
- (२२) प्रतिष्ठा का उच्चसोपान ।=)
- (२३) मित्रभाव बढ़ाने की कला ।=)
- (२४) आन्तरिक उल्लास का विकास ।=)
- (२५) आगे बढ़ने की तैयारी ।=)
- (२६) अध्यात्म धर्मका अवलम्बन ।=)
- (२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=)
- (२८) ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्ति योग ।=)
- (२९) यम और नियम ।=)
- (३०) आसन और प्राणायाम ।=)
- (३१) प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ।=)
- (३२) तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
- (३३) आकृति देखकर मनुष्य की पहचान ।=)
- (३४) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=)
- (३५) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=)
- (३६) हस्तरेखा विज्ञान ।=)
- (३७) विवेक सतसई ।=)
- (३८) संजीवनी विद्या ।=)
- (३९) गायत्री की चमत्कारी साधना ।=)
- (४०) महान जागरण ।=)
- (४१) तुम महान हो ।=)
- (४२) गृहस्थ योग ।=)
- (४३) अमृत पारस और कल्प वृक्ष की प्राप्ति ।=)
- (४४) घरेलू चिकित्सा ।=)
- (४५) बिना औषधि के कायाकल्प ।=)
- (४६) पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण ।=)
- (४७) हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ? ।=)
- (४८) विचार करने की कला ।=)
- (४९) दीर्घ जीवन के रहस्य ।=)
- (५०) हम वक्ता कैसे बन सकते हैं ।=)
- (५१) लेखन कला ।=)
- (५२) प्रार्थना के प्रत्यक्ष चमत्कार ।=)
- (५३) विचार संचालन विद्या ।=)
- (५४) नेत्ररोगों की प्राकृतिक चिकित्सा ।=)
- (५५) अध्यात्म शास्त्र ।=)
- (५६) स्वप्न दोष की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा ।=)
- (५७) सफलता के तीन साधन ।=)
- (५८) शिखा और यज्ञोपवीत की रहस्यमय विवेचना ।=)
- (५९) दूध की चमत्कारिक शक्ति ।=)
- (६०) दैवी सम्पदाएं ।=)
- (६१) अध्यात्म विद्या का प्रवेश द्वार ।=)
- (६२) कुछ धार्मिक प्रश्नों का उचित समाधान ।=)
- (६३) सुखी वृद्धावस्था ।=)
- (६४) आत्मोन्नति का मनोवैज्ञानिक मार्ग ।=)
- (६५) वैज्ञानिक अध्यात्मवाद ।=)
- (६६) प्रत्यक्ष फलदायिनी साधनाएं ।=)

मूल्य में कमी के लिए लिखा पढ़ी करना बिलकुल व्यर्थ है। छै रुपये से कम की पुस्तकें लेने पर डाकखर्च मंगाने वाले के जिम्मे होगा। छै रु० से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ।